वर्ष ५
पूर्णाङ्क ५४

गुरुकुल पत्रिका

जनवरी
१९५३

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक — एक प्रति
विदेश में ६) वार्षिक — छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

समर्पण

श्री भगवद्दत्त जी वेदालंकार

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य मे ब्रह्मप्राप्ति के साधनभूत योग व अध्यात्म मार्ग में अव्याहतप्रगति के लिये समर्पण को बहुत महत्व दिया है। केवल ब्रह्मप्राप्ति ही नहीं किन्तु मानव जीवन में किसी भी क्षेत्र में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिये तथा दुर्लभ से दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति के लिये समर्पण ही सर्वोत्कृष्ट साधन होता है। मनुष्य का जो भी कोई लक्ष्य हो वह उसके प्रति अपने आप को न्यौछावर कर देवे, उस भाव में अपने आपको पूरी तरह अर्पित कर देवे तब सफलता अवश्यम्भावी सी हो जाती है। जिस भाव को हम आधुनिक भाषा में समर्पण शब्द से कहते हैं उसे ही हम न्यौछावर करना, सौंपना, सुपुर्द करना, आत्मनिवेदन, शरणागति आदि शब्दों से कुछ अंश में प्रकट कर सकते हैं। वेदों व प्राचीन वैदिक साहित्य में इस समर्पण के लिये सुपरिचित शब्द यजन यज्ञ मिलता है। वेदों का केन्द्रीय विचार व सबके प्रति केन्द्रीय उपदेश यज्ञ ही हैं। समय समय पर विद्वानों ने यज्ञ पद से अनेकों विभिन्न भाव गृहीत किये। परन्तु इस यज्ञ परिभाषा का यदि कोई सर्वार्थ हो सकता है उसमें अथवा यज्ञ के अन्य प्रत्येक भाव में जिसका होना नितान्त अनिवार्य है, वह आधुनिक भाषा में समर्पण ही है। यह समर्पण यज्ञ के सभी भावों में ओतप्रोत है। स्वामी दयानन्द ने अपनी 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में समर्पण की व्याख्या करते हुए 'यज्ञेन कल्पताम्' पदों से समर्पण के महत्व को इतना सर्वोन्नत व व्यापक रूप दे दिया है कि इसकी महत्ता व अनिवार्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता। 'भूमिका' में 'प्रार्थना याचना समर्पण विषय' में समर्पण के सम्बन्ध में उनके उद्‌गार ये हैं—

'एवमेव वाजश्च म इत्यष्टादशाध्यायस्थै मंन्त्रैः सर्वस्वसमर्पणं परमेश्वराय कर्तव्यमिति वेदे विहितम्'

अर्थात् यजुर्वेदीय १८ वें अध्याय के मन्त्रों में भगवान् के प्रति सर्वस्व समर्पण करना चाहिये, ऐसा वेद मे विधान किया है। यजुर्वेद के इस १८ वें अध्याय के सब मन्त्रों का समर्पण में विनियोग कारक 'यज्ञेन कल्पताम्' है जो कि सब मन्त्रों की अन्तिम कड़ी है। हमारा तो यह विचार है कि यह समर्पण ही योग की प्रथम सोपान है। और इसकी पूर्णता ही योग के अन्तिम रूप पूर्ण-निष्काम की प्राप्ति है। उपनिषदों का आत्मकाम, अकाम, निष्काम आदि अन्तिम प्राप्त-व्यस्थान समर्पण का ही परिणाम है। भूमिका में स्वामी दयानन्द ने जो लिखा है, उसका भाव यह है कि हमारी आत्मा, मन प्राण, इन्द्रिया, व शरीर आदि मनुष्य का सम्पूर्णस्वरूप, सूर्य, पृथ्वी आदि भौतिक वस्तुओं का उपभोग, ऋग्, यजु आदि चारों वेदों का अध्ययन, तथा अन्य सब कर्म भगवान् के प्रति समर्पित हों। वे अन्त में लिखते हैं—

एतद् सर्वं परमेश्वराय समर्पितमस्तु येन वयं कृतार्थाः स्याम

अर्थात् उपर्युक्त सब वस्तुएं परमेश्वर को ही समर्पित होनी चाहिएं जिससे कि हम उसके कृतज्ञ हो सकें। इस प्रकार स्वल्प शब्दों में समर्पण की महिमा व अनिवार्यता को प्रदर्शित करते हुए उन्होंने उसका चरमफल मोक्ष व भगवत्प्राप्ति तक बताया है।

श्री मद्भगवद् गीता में समर्पण को बहुत मुख्यता दी गई है। उदाहरणार्थ गीता का प्रसिद्ध श्लोक है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

हे अर्जुन! तू जो कुछ खाता है, जो आहुति देता है, जो दान देता है, और जो तपश्चर्या करता है, वह सब मेरे अर्पण करदे। यह कार्यों का समर्पण हुआ। परन्तु आगे आन्तरिक अगों तक का भी समर्पण करने की आवश्यकता है। इसलिए भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

'मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यसंशयम्'।

अपने मन और बुद्धि को भी मुझ मे अर्पित रखने से निःसंदेह तू मुझे प्राप्त कर लेगा।

भौतिक सफलता में समर्पण

भगवत्प्राप्ति के लिए समर्पण भाव की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही आवश्यकता भौतिक सफलता के लिये भी है। मनुष्य को रात दिन उसी में तल्लीन होना पडता है, उसी का वह प्रतिक्षण चिन्तन करता है। गीता के अमुक वचन 'योगः कर्मसु कौशलम्' का अन्त निगूढ़ रहस्य भी इसी समर्पण भाव में निहित है। क्योंकि मनुष्य को कर्मों में कुशलता तभी प्राप्त होती है जब कि वह अमुक कर्म में पूर्णरूप से आत्मदान कर देता है। किसी देश,समाज, व संस्था की उन्नति व अवनति की प्रमुख कसौटी यही है कि उस देश के कर्णधारों, समाज के नेताओं व संस्था के अधिकारियों ने अपने आपको कितना समर्पित किया हुआ है। संसार में प्रायः कर ऐसे मनुष्यों की भरमार है जिनमें किसी के भी प्रति समर्पण की भावना नहीं होती, और जिनमें यह भावना होती भी है, तो उसमें बहुत संख्या ऐसे व्यक्तियों की है जो कि सांसारिक उद्देश्यों व उनकी पूर्ति की अभिलाषा से न चे के देवों के प्रति अपने को समर्पित करते हैं। गीता में भगवान् कृष्ण ने इस बात को निम्न प्रकार से कहा है—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्यायान्ति मद्याजिनोऽपिमाम्॥

देवताओं को चाहने वाले देवों को प्राप्त होते हैं, पितृव्रत धारण करने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं। भूत व भौतिक पदार्थों का यजन करने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं। और मेरा यजन करने वाले मुझे प्राप्त होते हैं—

इसलिए अन्य देवताओं, अन्य उद्देश्यों व वस्तुओं के प्रति आत्म समर्पण करने वाले व्यक्ति उन उन अभीष्ट देवों, उन उद्देश्यों व वस्तुओं को तो प्राप्त कर लेंगे पर भगवान् को नहीं प्राप्त कर सकेंगे। भगवान् को पाने के लिए तो दृढ़भावना से और पूर्ण भाव से भगवान् को ही आत्म समर्पण करना होगा। ऐसे साधक की भगवान् के सिवाय और कोई अहंभावापन्न कामना नहीं होनी चाहिये। उसका उठना बैठना, खाना पीना, रहना सहना, आदि सभी कर्मे, सभी क्षण, उसकी अन्दर बाहिर की सब सत्ता, और उसकी सत्ता के सब अग भगवान् को ही अर्पित होने चाहिये। कुछ भी बचा कर न रखा जायेगा तभी ठीक समर्पण होगा।

समर्पण में कामना का स्थान

मनुष्य की किस अवस्था को हम समर्पण की सच्ची अवस्था कह सकते हैं, यह एक बहुत बड़ा गहन व सूक्ष्म विषय है। क्या कामना मात्र का पूर्णतया परित्याग कर देना समर्पण का असली स्वरूप है? जो व्यक्ति निष्काम शब्द से कामना का अत्यन्ताभाव यह भाव गृहीत करते हैं उनकी दृष्टि से तो निष्कामता अप्राप्तव्य व अत्यन्त अव्यवहार्य है। इस से तो कर्म

मात्र का समुच्छेद व दूसरे शब्दों में ससार का विनाश ही है। जिस भाव से कर्म मात्र का ही विनाश हो जावे तो उसमें समर्पण किसका होगा ? और यह भी तो सम्भव नहीं कि कर्म मात्र की समाप्ति हो जाये। गीता के शब्दों में—

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

मनुष्य एक क्षण भी बिना कर्म के नहीं रह सकता। इस लिये कर्म का प्रेरक धर्माविरुद्ध काम तो निष्काम अवस्था में भी होता है। यह धर्माविरुद्ध काम सब प्राणियों में भगवान् का ही रूप है। वेद में काम के दो रूपों का वर्णन आता है। एक काम शिवतनु है जो कि कामनाओं के महाकाम भगवान् का रूप है। दूसरा पापतनु है, जिसका निष्काम अवस्था पैदा करके परिहार करना है। मन्त्र में इन दोनों रूपों का इस प्रकार वर्णन किया है।

यास्ते शिवास्तन्वःकाम भद्रा याभिःसत्यं भवति यद् वृणीषे।
ताभिष्ट्वमस्मा अभि संविशस्वान्यत्र पापी रपवेशया धियः॥
अथर्व ६। २। २५

हे काम रूप भगवान्! जो तेरा कल्याणकारी श्रेष्ठ रूप है, उसके द्वारा तू जिसको वरण करता है अर्थात् चुनता है वह सत्य होता है। हे काम! उन शिवरूपों से तू हमारे में प्रवेश कर और पाप बुद्धियों को हम से दूर अन्यत्र लेजा। इस प्रकार जो मनुष्य भगवान् के महाकाम रूप में अपने काम को सम्मिलित कर देते हैं, इनके काम में और महाकाम रूप भगवान् में कोई भेद नहीं रहता तब यह मानव के लिए निष्कामता का सर्वश्रेष्ठ रूप होता है। काम व निष्काम शब्दों के और भी स्पष्टीकरण के लिये उदाहरण द्वारा हम इस पर विचार करते हैं।

संसार मानों एक क्रीडाङ्गन है। भगवान् देवी-देवता आदि विविध रूपों में रूपान्तरित हो मनुष्यों से खेल खेल रहे हैं। इस क्रीडाङ्गन में तीन प्रकार के मनुष्य हैं। एक मनुष्य वे हैं जो इस क्रीडाक्षेत्र में किसी प्रकार आ तो गये हैं, पर इस क्रीडा में सम्मिलित होना नहीं चाहते। गेंद आती है और उनको लग कर गिर पड़ती है। उनमें कोई प्रतिक्रिया नहीं, ठूंठ के समान निश्चल खड़े हैं। ऐसे मनुष्यों को भगवान् का आदेश होता है कि यदि तुम मेरी इस क्रीडा में शामिल होना नहीं चाहते तो अच्छा जाओ, इस क्रीडाक्षेत्र से बाहिर हो जाओ। इसका हम एक प्रकार की मुक्ति कह सकते हैं। इन्हीं में भी मनुष्य हैं जो प्रकृति के प्रभावों से प्रभावित हो प्रतिक्रिया तो करते हैं, पर जड़भरत की तरह। ये उपर्युक्त अवस्थाएं भी निष्काम अवस्थाएं कही जा सकती हैं, पर उत्कृष्ट कोटि की नहीं। क्यों कि यह अवस्था भी गीता की दृष्टि से 'मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि' अकर्म की अवस्था है। ऐसी आत्माएं भगवान् के इस लीला क्षेत्र व विश्वप्रपञ्च से बाहिर जा पहुँचती हैं। दूसरे मनुष्य वे हैं जो इस क्रीडा में शामिल होते हैं। और जो गेंद स्वभावतः अपनी बारी पर आ जाती है, उसे पहिले ही प्राप्त करने के लिये इच्छा करते हैं, तड़पते हैं, और हाथ पैर मारते हैं। और जब गेंद मिलती है तो यह भूल कर कि यह सब भगवान् का खेल है, जिस में कि हम सब शामिल हैं, उस गेंद को सर्वेसर्वा समझ कर उस पर मोह, ममत्व व आसक्ति पैदा कर लेते हैं। उसे अपने से पृथक् होने देना नहीं चाहते। गेंद इनसे बल पूर्वक छीन ली जाती है। ऐसे मनुष्य वरुण पाश में बद्ध सांसारिक जीव हैं। निष्कामरूपता का तो यहां प्रश्न ही नहीं। तीसरे प्रकार के देवतुल्य मनुष्य वे हैं जो भगवान् की इस लीला में पूर्ण रूप से हाथ बटाते हैं। वे गेंद को सुचारु रूप से ग्रहण कर और भी प्रकृष्ट रूप से फैंकते हैं। गेंद पर उनका मोह, महत्व आदि कुछ नहीं। उन्हें इस बात की भी परवाह नहीं कि भगवान् किस स्थान पर और किस परिस्थिति में खड़ा कर खेलने की आज्ञा देते हैं। ऐसे मनुष्य दिव्य कर्मी होते हैं। इस प्रकार संसार के प्रति उनकी वह यह क्रीडा व क्रीडाक्षेत्र की भावना सदा जागरूक रहती हैं। इसी तरह अनेक दिव्य कर्मी पुरुष ससार

को प्रवाह रूप में देखते हैं। उनकी दृष्टि में संसार एक गतिशील प्रवाह है। इस में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं। दो वस्तुओं का परस्पर संघटन व विघटन प्रवाह का स्वाभाविक गुण है। महाभारत के शब्दों में यह कहा जा सकता है—

यथा काष्ठ च काष्ठ च समेयाता महादधौ ।

समेत्य च व्यपेयाता तद्वद्भूतसमागमः ॥१८८।३६

जिस प्रकार महान् समुद्र में तरंगों की हिलोरों से विरुद्ध दिशाओं से आकर दो काष्ठ आ मिलते हैं, और दूसरी तरंग से फिर विभक्त हो जाते हैं। उसी प्रकार संसार में सब भूतों के समागम को समझना चाहिये।

अतएव सब वस्तुएं नियमित प्रवाह में प्रवाहित हो रही हैं। इस प्रवाह को अपने पूर्ण रूप में बनाये रखने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि, एक हाथ से वस्तु ग्रहण की दूसरे हाथ से प्रवाहित कर दी। वेद ने ऐसी भावनाओं को यज्ञ शब्द से प्रकट किया है। संसार एक यज्ञस्थली है। भगवान् स्वयं यज्ञ रूप होते हुए भी यज्ञ कर रहे हैं। देवी देवता इस यज्ञरूप भगवान् से निरन्तर यज्ञ कर रहे हैं। प्रश्न होता है यह किस लिए? यह सब इस महान् यज्ञ में आत्माहुति देने के लिये। स्वार्थ व कामना का का तो यहां कोई स्थान ही नहीं। इसी प्रकार वैदिक धर्म में प्रत्येक आर्य सद् गृहस्थ को प्रतिदिन पञ्चयज्ञों के अनुष्ठान का उपदेश प्रमुख रूप से निष्कामता का पाठ पढ़ाने के लिये ही है। वैदिक पुरुष का जहां यह आदर्श है कि 'स्याम पतयो रयीणाम्' हम ऐश्वर्यों के स्वामी होवें वहां दूसरी तरफ वह 'इदं न मम' यह मेरा नहीं है, इस यज्ञीय-भावना से भी सदा भावित रहता है। इस लिये वेदों में 'प्रजाकाम', धनकामः' इत्यादि शब्दों का प्रयोग आवश्यक नहीं कि हीन दृष्टि से हो। वरन् याज्ञिक भावना की व्याख्या का एक व्यवहारिक प्रकार भी हो सकता है। इसी दृष्टि से वेदोक्त दाश्वान् पुरुष जिसने कि भगवान् के प्रति अपने आपको पूर्ण रूप से समर्पण किया हुआ है, वेद में 'प्रजाकामाय दाशुषे' प्रजा अर्थात् सन्तति की कामना वाले रूप में व्यवहृत हुआ है। प्रजा की कामना गार्हस्थ्य यज्ञ की पूर्णता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जब गृहस्थ में यज्ञ की भावना करते हैं, तब इस प्रकार की औपनिषदिक भाषा का प्रयोग किया जाता है।

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्य उपस्थ एव समिद् यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चि र्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विष्फुलिङ्गाः। तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुते गर्भः सम्भवति।

यहाँ लोकाचार की दृष्टि से यह अश्लील व ग्राम्य प्रयोग भले ही हो, पर याज्ञिक रूप की व्याख्या का एक वैज्ञानिक प्रकार है। इस रूप में अश्लीलता का लेश-मात्र भी स्पर्श नहीं। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में याज्ञिक परिभाषाओं व उनके व्यापक रूपों के विशदीकरणार्थ कई ऐसी वाक्यावलियों व शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है, अथवा उनका प्रयोग हुआ है जो बाह्य रूप में अन्य अर्थ का बोध कराते हैं और गुह्य रूप में अन्य ही अर्थ। अथवा यह भी हो सकता है कि उनका कोई अर्थ न हो। ऐसा ही वेद का काम शब्द है। इसके भी दो रूप हैं। वेद के शब्दों में एक शिव और दूसरा अशिव। बाह्य लोक व्यवहार में इसका निकृष्ट कोटि का अर्थ भले ही हो, पर वेद में बहुतायत से यह काम शब्द विश्वप्रकृति के स्वाभाविक गुण को निर्देश करने वाला है। और वह व्यष्टि में समष्टि महा काम का ही एक अन्श है। गीता के शब्दों में जिस प्रकार यज्ञातिरिक्त कर्म बन्धन के कारण होते हैं—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्रलोकोऽयं कर्म बन्धनः।

[श्रद्धानन्द स्मारक निधि में भेंट दी जाने वाली पुस्तक का अंश]

जब गांधी जी गुरुकुल कांगड़ी में आए थे

स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन का संस्मरण

श्री सत्यदेव विद्यालंकार

लगभग तीन युग पुरानी घटना है। युग से अभिप्राय १२ वर्षों से है। सारे आश्रम में शोर मच गया कि गांधी जी पधारे हैं। छोटे बड़े सब दौड़ पड़े उनके दर्शनों के लिये। मैं स्कूल में दसवीं श्रेणी में पढ़ता था। आयु छोटी थी, पर दर्शनों की उत्सुकता किसी से कम न थी। मैं भी दौड़ा गया स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के बंगले तक। वहां दर्शन किये। उसके बाद वे सारे आश्रम को दर्शन देते हुये हमारे कमरे पर पधारे। दिल तो क्या ही भरता था? पर जितना भी देख पाया उसका छाया-चित्र आज तक भी मेरे हृदय पर अंकित है। वह सफेद गुजराती पगड़ी, ऊंची धोती और पुराने ढंग का अंगरखा पहने हुये उस वेश में थे, जिसमें उनका पुराना चित्र मिलता है। कुछ घण्टे रह कर वे लौट गये और यह आश्वासन देते गये कि कुछ समय बाद होने वाले कुम्भ के मेले पर वे जब पधारेंगे, तब कुछ समय गुरुकुल को भी देंगे।

२

दक्षिण अफ्रीका सत्याग्रह के कारण गुरुकुल के प्रति गांधी जी आकर्षित हुये थे। राजर्षि गोखले की उस अवसर पर एक अपील प्रकाशित हुई थी, जिसमें आर्थिक सहायता के बिना सत्याग्रह के विफल हो जाने की आशंका प्रकट की गई थी। उस अपील में देश के युवकों और विद्यार्थियों से अपने कर्तव्य का पालन करने का विशेष अनुरोध किया गया था। आचार्य स्वामी श्रद्धानन्द की प्रतिभा ऐसी अवसरों पर कुछ अद्भुत चमत्कार दिखा जाती थी। वे कोई न कोई ऐसा कदम उठाया करते थे कि देश में तूफान सा आ जाता था। गुरुकुल कांगड़ी में विद्यार्थियों की एक सभा में स्वामी जी ने उस अपील को पढ़ा। निश्चय किया गया कि अपने राशन में कटौती करके विद्यार्थी कुछ बचत करें और अध्यापक तथा अन्य कर्मचारी भी अपने वेतन में से कुछ दें। पर, उसको पर्याप्त नहीं समझा गया। यह विचार प्रस्तुत किया गया कि कुछ मेहनत मजदूरी करके पैसा जमा किया जाय और सत्याग्रह को सहायता के लिये दिया जाय हरिद्वार के ऊपर गंगा पर दूधिया बांध का काम चल रहा था। वहां मजदूरी करने का निश्चय किया गया। आठवीं श्रेणी के विद्यार्थी वहां गये। सात दिन वहां काम किया गया। १५०० रुपये जमा किये गये और राजर्षि गोखले की सेवा में भेजे गये। इस प्रकार सहायता जमा करने की वह पहली ही घटना थी। सरकारी नियन्त्रण में बंधी शिक्षा-संस्थायें भला क्या इस प्रकार का कोई काम कर सकती थीं? गैर-सरकारी संस्थाओं में यत्र-तत्र इस उदाहरण की नकल अवश्य की गई।

गोखले जी गुरुकुल को संस्कृत की पुराने ढंग की एक पाठशाला मानें हुए थे। जब भी उनसे गुरुकुल आने के लिये अनुरोध किया जाता, तब वे सहसा बिना कारण बताये टाल देते। इस घटना से उनकी गुरुकुल के सम्बन्ध में सारी धारणा ही बदल गई। २७ नवम्बर १९१३ के एक पत्र में उन्होंने स्वामी जी को लिखा कि "मुझे रेवरेंड एण्डरुज और पण्डित हरिश्चन्द्र से मालूम हुआ कि किस प्रकार गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने घी-दूध छोड़ कर और साधारण कुलियों तथा मजदूरों की तरह काम करके दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के लिये सहायता इकट्ठी की है। इस उत्साहप्रद देशभक्ति पूर्ण कार्य के लिए मैं उनको क्या धन्यवाद दूं? यह तो वैसे ही उनका अपना काम है, जैसे कि आपका और मेरा है। भारत माता के प्रति उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन किया है। त्याग और निष्ठा का जो आदर्श उन्होंने उपस्थित किया है, उसकी अपने हृदय से प्रशंसा किये बिना मैं नहीं रह सकता। मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ होऊंगा, यदि आप मेरा भाव उन

तक पहुँचा देंगे।"

गांधी जी ने अपने २१ अक्टूबर १६१४ के पत्र में फोनिक्स आश्रम (दक्षिण अफ्रीका) से लिखा था कि "प्रिय महात्मा जी, श्री एण्डरुज ने आपके नाम और काम का मुझे परिचय दिया है। मैं अनुभव करता हूं कि किसी अजनबी को पत्र नहीं लिख रहा हूं, इस लिए आशा है कि आप मुझे आपको 'महात्मा जी' लिखने के लिए क्षमा करेंगे। मैं और श्री एण्डरुज आपकी और आपके काम की चर्चा करते हुए आपके लिए इसी शब्द का प्रयोग करते हैं। श्री एण्डरुज ने यह भी बताया है कि आप, गुरुदेव और श्री रुद्रा से वे किस प्रकार प्रभावित हुए हैं। आपके विद्यार्थियों ने सत्याग्रहियों के लिए जो काम किया है, उसका वर्णन भी उन्होंने मुझ से किया है। गुरुकुल के जीवन का जो चित्र उन्होंने खींचा है, उससे मैं यह पत्र लिखते हुए अपने को गुरुकुल में ही बैठा हुआ समझता हूँ। निस्सन्देह उन्होंने मुझे इन तीनों सस्थाओं को देखने के लिए अधीर बना दिया है और मैं उनके सचालकों, भारत के तीनों सपूतों के प्रति अपना आदर व्यक्त करना चाहता हूँ। आपका

मोहनदास के. गांधी।"

मूल पत्र गांधी जी के हाथ का लिखा हुआ अंग्रेजी में है। यह उसका अनुवाद है। मूलपत्र गांधीजी के पत्रों के संग्रहालय में रखने के लिए लेखक ने श्री देवदास गांधी को दे दिया है। दिल्ली में राजघाट पर हुई प्रदर्शनी में भी इसको रखा गया था।

इस प्रकार गांधी जी का गुरुकुल के और स्वामी श्रद्धानन्द जी के प्रति स्नेह एव आकर्षण पैदा हुआ था। उसी से प्रेरित होकर वे दक्षिण अफ्रीका से इंग्लैंड होकर १६१५ में जब भारत आये थे और छः मास तक उन्होंने भारत का जब दौरा किया था, तब वे गुरुकुल भी अचानक ही पधारे थे। लेकिन, अपने आने की अनिश्चित सूचना आपने पूना से दी थी। यह पत्र गांधी जी की महानता का सजीव चित्र उपस्थित करता है। हिन्दी में लिखा गया वह पत्र निम्न लिखित है—"महात्मा जी, आपका तार मुझको मिला था। उसका प्रत्युत्तर तार से भेजा था। वह आपको मिला होगा मेरे बालकों के लिए जो परिश्रम आपने उठाया और उन्हीं को जो प्यार बतलाया उस वास्ते आपका उपकार मानने को मैंने भाई एण्डरुज को लिखा था। लेकिन आपके चरणों में सिर झुकाने की मेरी उम्मेद है इस लिए बिना आमंत्रण आने का भी मेरी फरज समझता हूँ। मैं बोलपुर से पीछे फिरू उस वक्त आपकी सेवा में हाजिर होने की मुराद रखता हू।

आपका सेवक—मोहनदास गाँधी।

गांधी जी के फोनिक्स आश्रम के विद्यार्थी गांधी जी से पहले ही भारत आ गये थे और वे दो बार आकर महिनों गुरुकुल रहे थे। यह भी कहा जा सकता है कि अहमदाबाद में साबरमती-आश्रम की स्थापना होने तक वे प्राय गुरुकुल म ही रहे थे।

(३)

कुछ ही समय बाद कुम्भ का पर्व आ गया। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज हर वर्ष प्रचार के लिए एक कैम्प लगाया करते थे। स्वामी दयानन्द जी की परम्परा को जीवित रखने के साथ-साथ आर्यसमाज के प्रचार का यह अवसर होता ही था। मायापुर की वाटिका कनखल हरिद्वार के बीच में स्थित आर्यसमाज की अपनी जायदाद थी। उसकी विस्तृत भूमि में प्रचार का कैम्प लगता था और उसी में बाहर से आने वालों के डेरे भी ताने जाते थे। एक छोटी सी बस्ती बस जाती थी। गांधी जी भी इस कुम्भ पर अपने आश्रम के विद्यार्थियों के साथ सेवा-कार्य के लिये पधारे थे। उसी वाटिका के हरिद्वार की ओर वाले कोने में एक विशेष शामियाना गाँधी जी के स्वागत के आयोजन के लिये लगाया गया था। गंगा से जो बड़ी नहर निकलती है, उसका पुराना मुख्य निकासी-स्थान यहीं

था। अब तो वह हरिद्वार से भी एक मील ऊपर चला गया है, जहा कि गंगा के सारे जल पर नियन्त्रण कर लिया गया है। प्राकृतिक दृष्टि से यह स्थान बहुत सुन्दर, आकर्षक और मनोहर है। स्टेशन, हरिद्वार और कनखल का इसको त्रिवेणी कहा जा सकता है।

आयोजन की दूर दूर तक धूम मच गई थी। कनखल हरिद्वार के लिये ता यह पहला ही आयोजन था। देहरादून, सहारनपुर और रुड़की, आदि से दूर २ से लोग पधारे थे। गुरुकुल तो सारा ही उठ कर मायापुर वाटिका म पहुँच गया था। ८ अप्रैल १६१५ को मध्यान्होत्तर बेला म यह आयोजन सम्पन्न किया गया था। एक भावपूर्ण, सुन्दर व आकर्षक मानपत्र गांधी जी का भेंट किया गया था। उसमें कहा गया था कि 'मातृभूमि के वस्त्र फटे हुये हैं दिन २ कृशता घेर रही है, शरीर काटों से छिदा हुआ है, रुधिर बह रहा है। ऐसे अवसर पर वह आपकी ही ओर स्नेह और आशा से देख रही है आप ही दूसरों के सामने उसका मुख उज्वल करने वाले हैं। आप स्वाधीनता के दिव्य मन्त्र से दीक्षित हैं। राष्ट्रीयता की नौका के कर्णधार हैं। देश भक्तों मे अग्रणी है। इस कुल क पूजनीय अतिथि है।'

गांधी जी ने उत्तर में कहा था कि 'मै हरिद्वार महात्मा जी के दर्शनों के लिये आया हूँ। मै उनके प्रेम के लिये कृतज्ञ हूँ। श्री एण्ड्रूज ने भारत में मिलने के योग्य जिन तीन महापुरुषों का नाम बताया था, उनमें महात्मा जी एक हैं। ब्रह्मचारियों ने दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में जो सहायता की, उसके लिये मैं उनको धन्यवाद देता हूँ। उन्होंने फोनिक्स के विद्यार्थियों के प्रति जो प्रेम दिखाया है, उसको मैं कभी नहीं भुलूँगा। मुझको अभिमान है कि महात्मा जी मुझको भाई कह कर पुकारते हैं। मैं अपने में किसी को शिक्षा देने की योग्यता नहीं समझता किन्तु देश के किसी भी सेवक से मैं स्वयं शिक्षा लेने का अभिलाषी हूँ।

सम्भवतः यही अवसर था, जब कि इस मानपत्र मे गाँधी जी के लिये सबसे पहिले "महात्मा" शब्द का प्रयोग किया गया था। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज तब "महात्मा मुन्शीराम" के नाम से प्रसिद्ध थे और "महात्मा जी" ही कहे जाते थे। इसी लिये गान्धी जी ने उनके लिये इसी शब्द का प्रयोग किया था। इसके बाद तो यह शब्द गाँधी जी के नाम के साथ प्रयुक्त हो कर और भी अधिक सार्थक हो गया। साबरमती के आश्रम के सन्त और चम्पारन के सत्याग्रही के लिये इस शब्द का प्रयोग साधारण रूप मे किया जाने लगा। असहयोग और सत्याग्रह का महामन्त्र देकर गाँधी जी जब प्रगट हुये, तब 'सत्य' और 'अहिंसा' के देवदूत के लिये सिवाय 'महात्मा' के दूसरा कोई शब्द उपयुक्त हो ही नहीं सकता था। इस प्रकार महात्मा मुन्शीराम जी ने गाँधी जी को महात्मा गाँधी बनाया और बाद मे समय आया कि स्वामी श्रद्धानन्द बन जाने के ब द महात्मा गाधी ने स्वामी जी को सत्याग्रही बनाया और उस महान् सत्याग्रही ने दिल्ली में एक नये इतिहास का निर्माण किया।

(४)

बाद मे दोनों मे पैदा हुआ अन्तर देश का घोरतम दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है। बेलगाव में काग्रेस के अध्यक्ष चुने जाने पर गान्धी जी ने स्वामी जी को अत्यन्त आग्रह के साथ वहा बुलाया था और अपने भाषण में काग्रेस के सामने अपने अधिवेशनों के लिये गुरुकुल कॉगड़ी के उत्सवों का आदर्श उपस्थित करके उसको गावो की ओर जाने का आदेश दिया था।

★

हमारे स्वप्न

श्री कुञ्जबिहारीसिंह एम. ए.

[स्वप्नों पर बहुत प्राचीनकाल से लोग विचार करते आ रहे हैं। लेखक का कहना है कि स्वप्न भविष्य वक्ता नहीं। वे हमारे भूत की बातों के अभिनय हैं। उनकी भाषा सांकेतिक तथा आलंकारिक है। इन स्वप्नों को समझ कर हम अपने मन की विषम ग्रन्थियों को समझ सकते हैं और इस प्रकार अपने व्यक्तित्व दोषों को ज्ञान कर उनसे मुक्त भी हो सकते हैं। स्वप्नों से डरने की आवश्यकता नहीं। उनसे हम बहुत कुछ अपने वर्तमान मानसिक स्थिति का विश्लेषण कर सकते हैं। लेख पठनीय है। सम्पादक]

स्वप्न आप सभी ने देखे होंगे। स्वाभाविक निद्रा में ये हमारी भावात्मक, विचारात्मक तथा कभी २ क्रियात्मक शक्तियों को परिचालित करते रहते हैं। कभी उनका प्रभाव इतना तीव्र होता है कि हम वर्षों उन्हें याद रखते हैं विशेषकर डरावने, चिन्ता वाले स्वप्न तो बहुत कम भूलते हैं परन्तु अधिकांश स्वप्न हमें याद भी नहीं आते। इस प्रकार याद और भूले हुए अनेक स्वप्न आपने देखे होंगे। इन स्वप्नों से आप पीड़ित भी होते होंगे। यह अवश्य है कि इनके मानसिक उद्वेग हमारी शक्ति नष्ट करते हैं, भय, क्रोध, घृणा, चिन्ता आदि मानसिक विकार हममें मानसिक अस्वास्थ्य पैदा करते हैं तथा हमारी शारीरिक शक्ति कम करते हैं। जाग्रत अवस्था में तो ये हमें पीड़ित करते ही हैं परन्तु निद्रावस्था में भी हमारा पिंड नहीं छोड़ते।

प्रायः आप स्वप्नों से एक अन्य प्रकार से भी भय खाते होंगे। आपने इन्हें एक स्थान विशेष दे रखा है जो उचित नहीं है। आपका विचार है कि ये भविष्य की बातें आपको बताते हैं। आपने अनेक पुराने ग्रन्थों में भी इस प्रकार की बातें पढ़ी होंगी कि अमुक पुरुष को अमुक स्वप्न आया और फिर उसका यह परिणाम हुआ। किसी महापुरुष के जन्म के पहले उसकी माता अथवा पिता ने ऐसा स्वप्न देखा। किसी भावी कष्ट की चेतावनी अमुक व्यक्ति को स्वप्न से ही मिली। आप भी अपने दैनिक स्वप्नों में इसी प्रकार के अर्थ लगाया करते हैं और फिर भावी सुखों तथा आपदाओं के बीच अपने को दोलित करते हैं। गांव के किसान, शहर के मजदूर, पाठशाला के विद्यार्थी आदि तो इन विचारों में बहुत ही विश्वास करते हैं। परन्तु प्रायः प्रौढ़ तथा सुशिक्षित व्यक्ति भी स्वप्नों से भविष्य की कल्पना करने से नहीं चूकते।

स्वप्नों से डरना छोड़ दीजिये—आपको डराने के लिए उनमें कोई दैवी अथवा पैशाचिक शक्ति नहीं आती, न स्वप्न आप के आने वाले दुर्दिन अथवा सुदिन का समाचार देते हैं। स्वप्न तो आपके मित्र हैं जो आपको अपने मनकी दशा का ज्ञान कराते हैं। आप जिस घर के मालिक हैं, उस घर में अनेक प्रकार के विरोधी व्यक्ति घुसे हैं। वे आपके घर की व्यवस्था को बिगाड़ रहे हैं, वे आपकी परेशानियों को बढ़ा रहे हैं। यह सब कार्य वे आपसे छिपा कर करते हैं। क्यों न हो ? यदि आप जान जांय तो उन्हें निकाल कर ही दम लें। यदि कोई ऐसा व्यक्ति आवे और इन विरोधी शक्तियों को आपके सामने ला दें तो आप कितना प्रसन्न होंगे। यदि आप किसी संस्था के सञ्चालन के लिए उत्तरदायी हैं और उस संस्था में अनेक कार्य करने वालों से आपका काम पड़ता है और कोई व्यक्ति आपके विषय में कर्मचारियों के भाव और विचार बतलाता रहता है तो आप कितना उससे प्रसन्न रहते हैं। आप उसे अपना शुभेच्छु भी मानते हैं। हो सकता है वह व्यक्ति आपके सम्बन्ध के अशुभ समाचार आपको दे और आप तुरन्त उस प्रतिकूल परिस्थिति के लिए अपने को तैयार कर लें। वह आपको बताये कि फलां व्यक्ति आपके विरोध में षड्यन्त्र कर रहा है,

तुरन्त आप उससे सावधान हो जाते हैं।

स्वप्न भी इसी प्रकार आप का मित्र है—वह आपको अपने व्यक्तित्व को विशृंखलित करने वाली अनेक प्रतिकूल शक्तियों और भावनाओं का पता देता है। ये विरोधी शक्तियां स्वयं आपकी अपनी हैं। कोई बाहरी नहीं। आपके स्वय के संस्कार आपके प्रतिकूल हैं जो आपकी मानसिक शक्ति को नष्ट कर रहे हैं, जो आप में अन्तर्द्वन्द्व पैदा कर रहे हैं और जिनकी स्थिति का आपको ज्ञान नहीं है इस प्रकार स्वप्न आपके मन की वर्तमान परिस्थिति का ज्ञान कराता है। चूंकि वही परिस्थिति आगे भी आप के व्यवहार को संचालित करेगी इस कारण इस अर्थ में इसे आप भविष्य वक्ता भले ही कह लें परन्तु है यह सर्वथा वर्तमान के मन की दशा का रूप।

हमारा वर्तमान भूत से बना है। आज के विचार और व्यवहार पहले के किसी अनुभव से सञ्चालित होते हैं। हमारे पूर्व संस्कार (पूर्व जन्म के नहीं) हमारी वर्तमान मानसिक स्थिति के लिए जिम्मेवार हैं। इस प्रकार स्वप्न भी आप के किसी न किसी भूत के अनुभव से बधा है। यदि वह भूत का अनुभव दुखकर है तो आपको दुखकर स्वप्न होता है, यदि वह सुखकर सम्बन्ध वाला हो तो आप स्वप्न में भी प्रसन्न रहते हैं। अपने मनकी दुखकर स्मृतियों का बाहर निकालना आप के मानसिक स्वास्थ्य के लिए अतीव आवश्यक है। ये दुखकर स्मृतियां आपके प्रकाश्य व्यवहार को भी प्रभावित करती रहती हैं। यदि वे न होतीं तो आपका जीवन अधिक सुखकर होता और आपका व्यवहार भी अधिक प्रिय तथा स्वाभाविक होता। वे आपके व्यक्तित्व में दोष पैदा करती हैं। स्वप्न आपको इन विरोधी प्रवृत्तियों तथा भावनाओं का ज्ञान देकर आपकी सहायता करता है।

प्रायः इन विरोधी शक्तियों को हम प्रकट रूप से नहीं जान सकते—आप इस बात को भी सोच सकते हैं कि हम अपने मन के भावों को जानते हैं। हम अपने क्रोध भय, चिन्ता, कमजोरी से परिचित है। फिर स्वप्न हमें इनके विषय में क्या बतावेगा। यही तो हमारे ज्ञान की कमी है। प्रायः हमारे व्यवहार उन कारणों से परिचालित होते हैं जिनका हमको कोई ज्ञान नहीं। प्रायः हम असली कारण को प्रकाश्य रूप से मानने को तैयार ही नहीं हो सकते। हम उनको अपने व्यवहारों के प्रेरक मान नहीं सकते, और गलत कारण उनके लिए सामने ला देते हैं। असली कारण आपके नैतिक तथा सामाजिक भावना को ठेस पहुँचाने वाले हैं।

अपको मालूम है कि हम में से अनेक ऐसे भय और चिन्ताओं से व्यग्र हैं जिनका कोई वास्तविक कारण नहीं। इनके कारण अवश्य हैं परन्तु आपको उनका पता नहीं। शायद वे कारण ऐसे हैं जिनको आपका व्यक्तित्व अपना अग मानने को कभी स्वीकार न करे। उदाहरण के लिए आप अपने सामाजिक जीवन की पवित्रता की बहुत डींग हाकते हैं। आप अपने को बहुत निस्पृह भी मानते हैं। परन्तु आपका एक पड़ोसी है जो आप से अधिक प्रिय हो रहा है। इस कारण अप्रकट रूप से आप उस से घृणा करते हैं। आपका प्रकाश्य मन तो उससे अधिक प्रेम करता है. हो सकता है कि अचेतन मन से आप उससे जितना ही जलें, प्रकाश्य मन से आप उससे उतना ही प्रेम करें क्यों कि आपको वास्तविकता पर पर्दा जो डालना है। आपको कहीं से अपने पड़ोसी के नाम लिखा एक पत्र मिला जिसमें उसे कहीं बुलाया गया है, जहां जाने पर उसे कुछ धन की प्राप्ति हो जायगी अथवा उसे बड़ा यश मिलेगा। आप उस पत्र को पाते हैं और बहुत गम्भीरता से सोचते हैं कि उसे मिलते ही दे देंगे। परन्तु आप उस पत्र को पड़ोसी को तब देते हैं जब समय बीत जाता है और उसका वहाँ जाना बेकार सिद्ध होगा। आप पचीसों बहाने बताते हैं। असल में पत्र को भूल जाने के लिए कोई आपके लिए प्रत्यक्ष कारण नहीं। न आप किसी और कार्य में व्यग्र थे और

न किसी प्रकार का और व्यवधान और पड़ोसी आया भी थोड़े ही देर में। फिर पत्र देने में भूलना क्यो हुआ ? ऐसा भी है कि आप स्वयं नहीं जानते कि आपने क्यों नहीं समय पर पत्र नहीं दिया। स्पष्ट है आप के अचेतन, अप्रकट मन की ईर्ष्या ने आप से यह बात कराई जो आप प्रकट रूप से कभी स्वीकार न करेंगे। आप अपने सामाजिक आदर्शों पर एक महान ठेस समझेंगे यदि यह बात आपके सामने लायी जाय।

हम लोग अपने जीवन में ऐसी अनेक बुरी ग्रन्थियों से पीड़ित हैं जो हमारे अपने आदर्शों तथा सिद्धान्तों की विरोधी हैं। हम किसी विचार से घृणा करते हैं परन्तु अप्रकट मन मे उनसे लिप्त हैं। हम किसी व्यक्ति से बहुत अनुराग प्रकट करते हैं परन्तु भीतर से उसके प्रति कटुता है। हमें परेशानी तो तब होती है जब ऐसे भाव हम स्वय अपने या अपने बहुत ही आत्मीय लोगों के प्रति रखते हैं। माँ अपने लड़के की मृत्यु का स्वप्न देखती है क्योंकि उसके अप्रकट मन में किसी कारण यह भाव आ गया है। पिता अपने पुत्र के अनिष्ट से डरता है क्योंकि अप्रकाश मन में वह पुत्र का अनिष्ट चाह चुका है। हम सभी की परछाई से घबड़ाते हैं क्योंकि अप्रकट मन मे उसके प्रति गन्दी भावना है। अपनी पत्नी के विषय में हम बुरे स्वप्नों तथा कल्पनाओं से पीड़ित हैं क्योंकि अप्रकट मन उसे किसी कारण विघ्न स्वरूप मानता है। हमारा प्रकट मन इसे स्वीकार नहीं कर सकता चूंकि जाग्रत अवस्था में इन विचारों और भावनाओं को हम प्रकट नहीं होने देते हैं हम उनके आभास भी नहीं आने देना चाहते, हमारा अन्तःकरण उन्हे चेतनामें नहीं आने देता, इस कारण वे निद्रावस्था मे स्वप्नके रूप में आती हैं। अन्तःकरण हमारे चेतन जगत का सृजक है। चेतना हट जाने पर इस की प्रतिरोधक शक्ति भी हट जाती है।

स्वप्नों में हमारे विचार और भावनाएं प्रायः भेष बदल कर आती हैं—यदि वे यों ही आवे तब तो चेतना आ जाय। यदि हम स्वप्न में सोचने लगे कि हम फला के लिये ऐसे गन्दे भाव रखते हैं हमारा आचरण यों गिर रहा है तो यह चेतना की बाते हुई। ऐसा नींद में सोचना असम्भव नहीं हम ऐसे विचारों को प्रकट नहीं आने दे सकते। इस कारण वे साप बन कर आते हैं। हाथी का रूप बना कर हमें वे पीड़ित करते हैं। कभी हम ऊपर से नीचे गिरने लगते हैं और हमारा दिल धड़कने लगता है। परन्तु ऐसे स्वप्नों में खतरे का अवसर आते ही हमारी चेतना आ जाती है। सांप काटने ही वाला है, हाथी के सूंड की लपेट मे हम आने ही वाले हैं अथवा नीचे के रूप में हम पहुँच ही गए हैं तभी आंखे खुल जाती हैं। हम घबड़ा कर उठते हैं और हमारी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों पर वैसे ही दबाव पडता है जो वास्तविक भय से होता है। बहुत बार तक हम स्वाभाविक नहीं आ पाते।

स्वप्न मे कभी २ हमारे विचार सूक्ष्म रूप बना कर आते हैं, कभी वे साकार आते हैं, कभी छोटी सी बात बहुत बड़े रूप में दिखाई पडती है, कभी अपने विचारों का आरोपण हम स्वप्न में दूसरों पर करते हैं, कभी अपनी जगह हम किसी और का रख कर अपना कार्य कर लेते हैं।

स्वप्न एक प्रकार से हमारा मन हल्का कर देते हैं—आपको मालूम है कि हमारी दबी हुई इच्छाएं, भय, कमजोरियाँ हमें अनेक प्रकार से पीड़ित कर सकती हैं। अन्दर ही अन्दर हम सोचते रहते हैं। आप सभी ने इस की अनुभूति की होगी कि कोई क्रोध यदि दबा दिया गया तो उस से व्यक्ति को बहुत पीड़ा पहुँचती है। यदि वह उमड़ गया तो हल्कापन आ जाता है। रो देने से मानसिक व्यथा गायब हो जाती है, हंस देने पर हम मन का भार

हटा लेते हैं। डाट फटकार करके किसी के प्रति हम घृणा की भावना से बच जाते हैं। यदि वे अवसर हमें नहीं मिलते तो हम परेशान से रहते हैं। हम भीतर ही भीतर पीड़ित, व्यग्र तथा व्यथित से रहते हैं। परन्तु यदि हमारे विचार और भावनाएं ऐसी हों कि हम उन्हें बाहर प्रकट होने का कोई अवसर ही देने से डरते हों, यदि उन मन के भावों को हमने दबा देने का प्रयत्न किया और निकलने का कोई रास्ता न दिया तो वे हमारे व्यक्तित्व में ज्वालामुखी की आन्तरिक अग्नि की तरह सुलगती रहती हैं। यदि विस्फोट हो हो गया तो व्यक्ति का व्यक्तित्व ही उड़ गया। समाज में कितने पागल, मूर्च्छा रोग से पीड़ित, स्नायविकता के बिगड़े मरीज इन्हीं लोगों में से हैं। स्वप्न आपकी इन दबी भावनाओं के लिए एक रास्ता दे देता है। प्रच्छन्न रूप से ही सही, वे निद्रावस्था में बाहर आ जाता है और एक प्रकार से अपनी भावात्मक शक्तियों का व्यय सा कर लेती हैं। स्वप्न विस्फोट के भयंकर परिणाम से आप को बचा देते हैं। अन्दर को आग्नि इधर उधर कई रास्तों से निकल पड़ती है और फिर भयंकरता का रूप ग्रहण नहीं करने पाता।

स्वप्न के नायक आप स्वयं हैं—यह आप याद रखें कि स्वप्न में देखी गई सारी करतूतें आपकी हैं। किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में, किसी भी परिस्थिति में देखा गया कोई भी स्वप्न आप से सम्बन्ध रखता है, किसी और से नहीं। स्वप्न आप के विचारों के कारण हुआ है, किसी दूसरे के विचारों के कारण नहीं। इस कारण स्वप्न के सारे खेलों में नायक आप हैं। हो सकता है कि आप कहीं छिपे हों, स्वप्न आप को दूसरे रूप में खड़ा कर दें, कभी आप बालक के रूप में, कभी युवक कभी वृद्ध बन कर आवें परन्तु आते हैं आप अवश्य। जब कभी स्वप्न हों तो आप अपने को ढूंने की चेष्टा कीजिए। कभी २ तो आप अपने को आसानी से पा लेंगे कभी कुछ परिश्रम करना पड़ेगा। घबड़ाये नहीं, यदि आप पुरुष हैं तो कदाचित सुन्दर या कुरूप कामिनी के रूप में आ सकते हैं, यदि आप स्त्री हैं तो ऐसा भी हो सकता है कि आप का लैंगिक रूप भी बदल जाय।

स्वप्न में पिछले दिन का कोई अनुभव विशेष अवश्य रहता है—चाहे स्वप्न कितना ही पुराना स्मरण क्यों न दिलाए - चाहे इस में आप २०,४०,५० या ७० वर्ष पुरानी बात देखें, आप के मरे हुए पिता, दादा, दादा परदादा जिन को आपने स्वयं देखा है अथवा सुना भी है, हजारों साल पहले की घटना जिसे आपने बहुत पहले पढ़ी है वे स्वप्न में आती हैं—परन्तु उसमें पिछले दिन की कोई स्मृति अवश्य बँधी है। या तो आपने कल ही इन के बारे में सोचा है पढ़ा है अथवा बात की है या ये कल के किसी दूसरे अनुभव के साथ आती है। कल वाली कोई न कोई बात स्वप्न में आपको अवश्य मिलेगी। आप इसे ढूंढने का प्रयत्न करें स्वप्नों को विश्लेषण करते समय हमें अपने को और कल की सम्बन्धित घटना को समझने की पहले कोशिश करना चाहिए। जब कभी आप स्वप्नों को समझने का प्रयत्न करें तो पहले यह देख लें कि आप उसमें कहां हैं, स्वप्न का नायक प्रधान व्यक्ति कौन है—उसे आप अपने को समझ लें, फिर स्वप्न में कल आप के अनुभव में आई बात को देखिए, वह आप को अवश्य मिल जायगी।

स्वप्न की भाषा बड़ी विचित्र होती है—आप जानते हैं कि जंगली मनुष्य या वे लोग जिनकी भाषा उन्नत नहीं है, संकेतों से बात करते हैं। एक पंजाबी, एक बंगाली से मिलता है, या एक मद्रासी, किसी उत्तर प्रदेशीय बाजार में जाता है तो वह कैसे बात करता है, वह अपने विचारों को इच्छाओं को दूसरों के ऊपर कैसे प्रकट करता है। आप इस बात को समझते होंगे कि यहां संकेत को छोड़ कर और कोई उपाय नहीं। ❀

अरबी लिपि का देवनागरी से सम्बन्ध

श्री डा० एस० महदी हसन

देवनागरी का 'द' वर्ण संयुक्त रूप में जैसे 'द्य' में–अपने पहले रूप से लगभग बिल्कुल ही बदल जाता है। 'द्य' का यह भाग जो 'द' को प्रकट करता है, वह बांयी से दांयी दिशा में एक अर्द्ध-वृत्त (सेमी-सर्कल) सा प्रतीत होता है। इस अर्द्ध-वृत्त वाले रूप को इसके आदर्शीय (दर्पण वाले उलटे प्रतिबिम्ब के) रूप में बदल कर इसे अरबी का साधारण 'दाल' वर्ण बना लिया गया है जैसे 'दुआ' में। परन्तु देवनागरी का यही 'द' संयुक्त रूप में जब किसी अक्षर के अंत में आता है जैसे 'द्द' में, तो इसका आकार अरबी के 'नून' से बहुत मिलता है। इस प्रकार जब हम देवनागरी में 'द' के संयुक्त रूप 'द्य' एवं 'द्द' को और इनके आदर्शीय–रूपों को देखते हैं तो तत्काल ही क्रमशः इनके अरबी रूपों (साधारण दाल और नून जैसे दाल) से इनकी बड़ी सरलता से तुलना की जा सकती है। नून जैसा दाल–नून से इसी बात में भिन्न होताहै किइस दाल के बीच में बिन्दु नहीं होता। जैसे अरबी में लिखे हुए 'द्द' में यही दाल है।

'च' और 'छ' की ध्वनियां यद्यपि एक जैसी हैं, तथापि देवनागरी में दोनों को प्रकट करने लिये बिल्कुल भिन्न २ वर्णों (च तथा छ) का आश्रय लिया जाता है। इसी प्रकार उनके अरबी रूपों की भी यद्यपि ध्वनियां एक सी हैं, परन्तु वहां भी उनके लिये प्रयुक्त होने वाले वर्णों ('च' और 'छ') का रूप परस्पर भिन्न होता है। देवनागरी वर्ण 'च' और 'छ' का सारभाग क्रमशः–'आधा च' (जैसे च्म में है) तथा 'छ' का निचला भाग है। अरबी मे 'च' और 'छ' बिल्कुल देवनागरी सारांशो के ही रूपान्तर हैं। उर्दु और मलय भाषाओं मे भी जहां अरबी शब्दों का प्रवेश बहुत अधिक है, उच्चारण की दृष्टि से छोटी-बड़ी (या क्रमशः हिन्दी–अरबी) दोनों 'हे' वर्णों मे कोई भेदनहीं है। इधर देवनागरी के 'च' और 'छ' की ध्वनियों मे भी बहुत समता पाई जाती है, जिनका अरबी रूप 'बड़ी हे' और 'छोटी हे' से बनता है। जैसे अरबी शब्द 'साहब' में 'बडी हे' है। और साधारण हिन्दी शब्द 'हो' को 'छोटी हे' से लिखा जाता है।

देवनागरी में 'म' का संक्षिप्त रूप इसके सयुक्ताक्षर–'ॐ' और 'छ्म्' में देखा जा सकता है। इन दोनों अवस्थाओं में इसका रूप एक फन्दे जैसा घुमावदार है (ᵕ) जिस में इसका सिर लकीर से नीचे की ओर रहता है। इसके इस भारतीय 'संयुक्त रूप' में और इसके अरबी रूप 'मीम' में अन्तर इतना ही है कि भारतीय वर्ण बांये से दांये को लिखा जाता है और अरबी वर्ण (कुछ दिशा बदल कर) दांये से बांये को। यह अरबी वर्ण 'म' के साराश का आदर्शीय रूप समझा जा सकता है (बांई या दांई ओर दर्पण रखने से)। जैसे 'हमारा' शब्द में 'मीम' का रूप कुछ दिखाई देता है।

अरबी का 'वाव' वर्ण तदनुकूल भारतीय 'व' (या 'आधे व'–ठ जैसे द्व में) से निकला है इन दोनों में भेद का कारण मुख्य रूप से

लिखने की दिशा का उलटा हो जाना (अर्थात् बांये से दांये के बजाय दांये से बांये को लिखा जाना) ही है। 'वाव' और 'आधा व'– दोनों में लगभग एक सा घुमाव है, बस केवल घुमाव की दिशा का ही अन्तर है। जैसे 'वाव' से लिखा हुआ 'हो' शब्द। देवनागरी का 'व' वर्ण इसके 'व' के लगभग अनुरूप ही है। 'व' के अनुरूप वर्ण अरबी में 'वाव' है। यदि देवनागरी की तरह अरबी में भी इसके 'ब' का रूप 'वाव' की तरह का ही रखा जाता तो 'ब' का वह रूप (दोनों में भेद की दृष्टि से) बहुत स्पष्ट न हो पाता। इसलिये इसका रूप अरबी में कुछ बदलना आवश्यक हुआ। यह देखा गया कि देवनागरी में 'ब' के सदृश दूसरा सर्वोत्तम वर्ण इसके वर्ग (पवर्ग) में ही 'प' है। इनमें केवल घुमाव का थोड़ा सा अन्तर है। देवनागरी के 'प' का अरबी में जो रूप (पे) हो जाता है, उसे अरब लोग बाद में वस्तुतः 'पार्शियन बे' कहने लगे थे। इसीलिये अरबी के 'पे' से या देवनागरी के 'प' से उन्होंने अपना 'बे' बनाया। देवनागरी के 'प' का संक्षिप्त आधा रूप (जैसे प्य मे है) एक हुक का सा प्रतीत होता है। इस वर्ण को यदि (इसके खड़े भाग को बांयी ओर से नीचे को लाते हुए) समकोण (९०° के कोण) पर घुमाने लगे तो यह नया वर्ण अरबी के बिल्कुल 'बे' जैसा ही बन जाता है, जिसमें नीचे एक बिन्दु और लगा दिया जाता है। यदि बिन्दु ऊपर लगाया जाता तो यह भाषा के प्रवाहमय रूप में अरबी के 'नून' का बोधक होता, इसलिये 'प' के घुमाए हुए उस आधे रूप में एक बिन्दु नीचे लगा दिया गया और इस प्रकार अरबी का 'बे' बना लिया गया। जैसे—अरबी शब्द 'रबक' में 'बे' मिलता है।

देवनागरी 'च' के आधे रूप (जैसे च्य में) से अरबी के 'हे' का जन्म हुआ, जिसमें किसी बिन्दु की आवश्यकता नहीं थी। परन्तु 'ज' वर्ण के आधे रूप (जैसे ज्य मे है) के आदर्शीय प्रतिबिम्ब (उलटे आधे ज) से ऐसा रूप बनता है जो अरबी के 'हे' (या-बड़ी हे) से बिल्कुल मिलता था। इसे यदि (देवनागरी के आदर्शीय 'उलटे ज' से मिलने के कारण) 'जीम' कह देते तो उसका 'हे' से भेद न रहता, इसलिए इसे 'हे' से कुछ भिन्न करने के लिए इसमें एक बिन्दु और लगा दिया गया। इस प्रकार देवनागरी के 'ज' के संयुक्त (आधे) रूप (जैसे ज्य में है) का आदर्शीय प्रतिबिम्ब लेकर उसमें एक बिन्दु लगाने से अरबी के जीम का जन्म हुआ। जैसे 'जन' में जीम का कुछ संक्षिप्त रूप देखा जा सकता है।

देवनागरी के 'ह' और 'त' वर्णों में नीचे का (जैसे 'त्य' में) आवश्यक भाग (सारांश)एक सा ही है। इस अनिवार्य भाग की आदर्शीय प्रतिमा भी दोनों की एक सी होगी। यह आदर्शीय रूप किसी वाक्य को बन्द करने वाले कौमे (इन्वर्टेड कौमे = ') जैसा होता है। अरबी के 'खलीफा' शब्द के अन्त में यही 'उलटे कौमे

जैसा' रूप है जो वहां 'ह' का बोधक है। इसके साथ यदि अन्त में ऊपर दो बिन्दु और लगा दिये जाय तो इससे 'खलीफा' शब्द 'खलीफत' में बदल जाता है। इसी को अधिक ठीक २ कहें तो कहना चाहिये कि वह उलटे कौमा जैसा 'ह' उन दो बिन्दुओं के कारण अरबी के 'ते' में बदल जाता है। वस्तुत. यहां खलीफत में ऊपर दो बिन्दु (ह के सारांश के विकार) 'अरबी हे' पर नहीं हैं, बल्कि देवनागरी 'त' के सारांश का विकार जो 'हे' है उसके ऊपर दो बिन्दु हैं। इस प्रकार 'त' का विकार अरबी में दो प्रकार से होता है। यहां 'ह' और 'त' में भेद करने वाले 'त' के दो बिन्दु ही हैं। अरबी में भाषा को प्रवाहमयी बनाने की दृष्टि से बिन्दु एक सर्वोत्तम वर्ण है जो कि ऊपर अकेले रूप में अरबी के 'नून' का बोधक है। इसलिये यहां दो बिन्दु लिये गये हैं ताकि इस 'ते' का नून' से भी भेद रहे और बिन्दुओं के कारण उसके जैसे 'हे' से भी इसका भेद हो जाय।

अरबी का यह 'उलटे कौमा जैसा रूप' ऊर्ध्वाधर (खड़ी दशा में) दो बिन्दु लगने पर 'ते' के एक रूप को प्रकट करता है और क्षैतिज (पड़ी दशा में) होने पर 'ते' के दूसरे रूप को। जैसे क्रमशः 'खलीफत' (यहां ते का ऊर्ध्वाधर रूप है) और 'खिलाफत' (यहां 'ते' का क्षैतिज रूप है) में हम देखते हैं। अरबी के इन दोनों रूपों का पितृ-रूप देवनागरी का एक ही वर्ण 'त' है यह बात इससे पहले अब तक किसी ने नहीं दिखाई थी।

देवनागरी के 'त' और 'ह' मे पाया जाने वाला यह 'सारभाग' (े) ही इसके 'ल' का 'सारभाग' है। यदि 'ल' को (ऊपर से दायें से बांयी ओर) डेड़ समकोण पर घुमाकर रखे '॥' तो इसका कौमा जैसा सार भाग ऐसा हो जाता है कि जिसकी दांये से बाये को नकल की जा सकती है। परिणामतः अरबी के 'लाम' का जन्म होता है, जैसे अरबी शब्द जबल (पहाड़) मे है। इसी प्रकार देवनागरी के संयुक्त 'दो ल' (ल्ल) को उसी तरह डेड़ समकोण पर घुमाने से अरबी के संयुक्त 'दो ल' का रूप (डबल लाम बन जाता है। जैसे अरबी शब्द 'लिल्लाह' (खुदा के वास्ते) में है। अरबी मे देवनागरी का 'ल' लिखने के लिए एक दूसरा वर्ण भी है जिसका छापे के अक्षरों मे प्रयोग होता है। जैसे शीघ्र-लिपि (शौर्ट हैण्ड) में समयानुसार लिखने की सुविधा की दृष्टि से एक ही वर्ण के लिये अनेक रूप बने होते हैं, इसी प्रकार अरबी भी एक ही संयुक्त वर्ण या किसी एक ही वर्ण को प्रकट करने के लिये कुछ हद तक (शीघ्र-लिपि की ही तरह) बहु-रूपी (पौलि-फौर्मिक) है। यहां मनोरञ्जक बात यह है कि वही 'ल' वर्ण मोड़ी लिपि (मराठी की एक पुरानी लिपि) में भी मिलता है (४), और इस भारतीय (मोड़ी लिपि के) वर्ण की ही तरह अरबी में इस अक्षर का संयुक्त रूप 'ला' (४।) भी पूर्णतः बांये से दांये को ही लिखा है। अर्थात् इसमें बांयी ओर 'ल' रहता है और दांयी ओर अलिफ, जब कि अरबी की (दांये से बांयी ओर की) पद्धति के

अनुसार 'ल' दांयी ओर और अलिफ बांयी ओर होना होना चाहिए था। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि अरबी लिपि का उद्गम अवश्य भारतीय या देवनागरी ही रहा है।

अरबी में 'काफ' के कम से कम तीन रूप हैं। अरबी के तीन रूपों के लिए देवनागरी में 'क' के दो नमूने ('क' और 'क्त') हैं। 'क' को यदि ऊपर-नीचे की दिशा में बिल्कुल उलटा कर दिया जाय (या उसे दो समकोण पर घुमा दिया जाय जैसे '5') तो हमें अरबी के 'काफ' का एक रूप मिल जाता है जो रूप अरबी के 'कान' शब्द में अलिफ के साथ है। जब उसी 'क' को बांये से दांयी ओर को समकोण पर घुमाकर रखते हैं (अ) तो अरबी के 'काफ' का दूसरा लम्बा सा रूप बन जाता है जो उसके 'कलम' शब्द में मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अरबी के ये दोनों बिल्कुल भिन्न प्रतीत होने वाले रूप देवनागरी के एक ही वर्ण 'क' से निकलते हैं, जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि कि अरबी लिपि का मूल भारतीय (देवनागरी) ही है। देवनागरी में 'क' का एक संयुक्त रूप 'क्त' है, वहां 'क' का सारभाग अरबी के कुछ 'उलटे ल' [क्त-अ ( ] = सारभाग) —] जैसा मालूम होता है। इसका यह सारभार ही अरबी में 'काफ' के तीसरे रूप के लिये चुन लिया गया है। परन्तु यह सारभाग अरबी के 'लाम' वर्ण से मिलता है, इस लिये इन दोनों में भेद करने के लिये 'काफ' में एक अतिरिक्त निश्चायक चिन्ह लगा दिया गया है यह चिन्ह 'काफ' के दूसरे (या क्षैतिज) रूप का ही एक संक्षिप्त संकेत सा है। जैसे अरबी शब्द 'ओल्टक' में है।

देवनागरी में 'र' के कम से कम दो रूप हैं, इसी प्रकार अरबी में भी इसके दो रूप हो जाते हैं। उदाहरण के लिये देवनागरी में 'ट्र' और 'र्ट' दो संयुक्त वर्ण हैं, जिनमें प्रत्येक में 'र' एक दूसरे से भिन्न रूप में लिखा जाता है। पर इन दोनों दशाओं में 'र' के अरबी रूप दांये से बांये को लिखे जाते है, ताकि उनके देवनागरी वाले बांयी से दांयी ओर के रूपों से वे भिन्न हो जायं। [जैसे वे क्रमशः तबर्रुक (प्रसाद) और ग़रब (पश्चिम) में हैं]। देवनागरी के सारांशों को क्रमशः समकोण पर और डेढ़ समकोण पर घुमाने से अरबी के ये रूप बन जाते हैं। अरबी का 'स्वाद' वर्ण देवनागरी के संक्षिप्त 'प' से निकला है। 'प' का 'य' के साथ संयुक्त संक्षिप्त रूप 'प्य' में देखा जा सकता है। यदि 'प्य' को (दांयी ओर से बांयी तरफ को) समकोण पर घुमाकर देखें तो ज्ञात होगा कि घूमे हुए वर्ण में निचला भाग (आधा 'प') सरलता से अरबी के 'स्वाद' का जनक हो सकता है। अरबी शब्द सादिक़ (सच्चा) में इसका संयुक्त दशा में संक्षिप्त रूप मिलता है।

अरबी में ऐसे बहुत से वर्ण हैं, जिन्हें सीधा देवनागरी से निकालना सभव न था। ऐसे स्थानों पर अरबी लेखकों को दूसरे (बने हुए) वर्णों में बिन्दु लगाकर वे नये अभीष्ट वर्ण बनाने पड़े। उदाहरणार्थ इस साधारण युक्ति ने तोय से जोय को और स्वाद से ज्वाद को जन्म दिया। [अनु०--श्री सत्यव्रत गुप्त वेदा०।]

सहशिक्षा पर वैदिक दृष्टिकोण

आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा 'पथिक'

आर्य समाज के प्रवर्त्तक, वेद क्रान्ति-दर्शी महर्षि दयानन्द जी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश" के तृतीय समुल्लास में लिखते —

"....विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए और वे लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिये। जो वहा अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य, अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पाच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे ...।" इन उपर्युक्त वाक्यों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि महर्षि दयानन्द जी सहशिक्षा (Co-education) के कितने प्रबल विरोधी थे; पर आज अत्यन्त खेद के साथ लिखना पड़ता है कि आजकल महर्षि के इस सिद्धान्त के विरुद्ध दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेजों में सहशिक्षा है। महर्षि के पवित्र नाम को भी कलंकित किया जा रहा है। सहशिक्षा के जो दोष हैं वे किसी से छिपे नहीं हैं। अनेक छात्र छात्राएँ सहशिक्षा के कारण जीवन संग्राम में प्रविष्ट होने के पहले ही मस्तिष्क बिगाड़ देते हैं। इस दशा में शतप्रतिशत ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर ही नहीं सकते। यदि वे इस भ्रष्टाचार से शिक्षित हुए तो क्या हुए ?

प्रो० शिवदत्त जी ज्ञानी एम० ए० ने वैदिक संस्कृति का वर्णन करते हुए कहा है— "स्त्री शिक्षा का भी यथोचित प्रबन्ध किया जाता था। स्त्रियों के लिए भी गुरुकुल रहते थे। (भारतीय संस्कृति, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ १४३)।

इससे ज्ञात होता है कि उस समय स्त्रियों के गुरुकुल अलग रहते थे।

श्री सी एम० रगा अय्यर ने मिसमेयो की दूषित पुस्तक "मदर इन्डिया" के उत्तर में "फादर इन्डिया" नामक पुस्तक लिखी है। उसमें आपने मि० जिएड से एक अमेरिकन अदालत के न्यायाधीश के निर्णय का उद्धरण देकर अङ्कित किया है कि उस न्यायप्रिय न्यायाधीश के निर्णय के अनुसार विश्वविद्यालयों से 'सहशिक्षा' के प्रभाव से दूषित युवतियों के चरित्र पर इस प्रथा ने भयङ्कर परिणाम उत्पन्न किया है। उस न्यायाधीश महोदय के निर्णय का सार यों है कि सहशिक्षा की प्रथा में पठित विद्यालयों की युवतियों में लगभग ७५ या ८० प्रतिशत ऐसी युवतियां पाई गई जो विवाह से पहले गर्भवती थीं। (फादर इण्डिया, अध्याय ३, कन्या मां के रूप में)।

सहशिक्षा के मानने वाले चाहे जितने गीत सहशिक्षा के गावे, चाहे जितना ही सत्यता पर आवरण डाल दे, पर यह सत्य छिपाये नहीं छिप सकता कि अविवाहित पुरुष स्त्रियों का शिक्षा के लिए एकत्र बैठना वा रहना अथवा विवाहित स्त्री पुरुषों क अन्य विवाहित पुरुष स्त्रियों का बे रोक टोक मिलना और पारस्परिक संसर्ग में आन उनको दूषित किए बिना नहीं छोड़ सकता

यह नैसर्गिक नर-नारी की प्रवृत्ति अग्नि और तृण के एकत्र होने की कहावत के अनुसार प्राय: देखी जाती है जिसको त्रिकाल में भी कभी दूर नहीं किया जा सकता। अतः धर्म शास्त्रों ने एकान्त मे माता, और भगिनी से मिलना भी वर्जित ठहराया है।

दैनिक पत्र "लीडर" ३।५।१६३५ ई० के अग्रलेख से पता चलता है कि मि० जस्टिस ख्वाजा मुहम्मद नूर भूतपूर्व वाइस चान्सलर पटना विश्वविद्यालय ने अपने एक भाषण में लड़के और लड़कियों के एक साथ पढ़ने की प्रथा को स्कूलों में प्रारम्भ करने में शीघ्रता करने की आवश्यकता बतलाई थी। राष्ट्रीय यूनिवर्सिटी बोर्ड के सम्मति मांगने पर लखनऊ यूनिवर्सिटी की एक कमेटी की यह सम्मति हुई कि ६-१० वर्ष की आयु तक लड़के लड़कियों का साथ पढ़ना प्रयोग में लाने योग्य है। उसकी यह भी सम्मति हुई कि उस अवस्था से ऊपर वालों की सहशिक्षा अनुचित है। जिस सभा में यह सम्मति निश्चित हुई उसमें वाइस चांसलर के अतिरिक्त अन्य सब सदस्य केवल स्त्रियां थी।

आन्ध्र विश्वविद्यालय ने कॉलिज की उपाधि कक्षाओं में सहशिक्षा का होना अनुचित बतलाया। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने दस वर्ष से ऊपर वाली लड़कियों व लड़कों के साथ पढ़ना अनुचित प्रकट किया। ढाका विश्वविद्यालय ने अपना यह मत दिया कि विश्वविद्यालय में प्रवेश से पहले लड़के और लड़कियों का साथ साथ अध्ययन अनुचित है। उपर्युक्त सम्मतियों से यह तो प्रकट है कि भारतीय शिक्षा के नेताओं की मनोवृत्तियां किस ओर जा रही हैं।

हमारे युवकवर्ग में शृङ्गार की मात्रा का भाव अधिक हो रहा है। क्या इस पर हम लोगों ने कभी विचार किया है? जिन युवकों का काम शिक्षा प्राप्त करने का था वे कितना समय बालों में क्यारियां बनाने और दर्पण, कंघा आदि में लगाते हैं? कितने ही उनमें चलचित्र देखने में ही रह जाते हैं? जब बिना अथवा न्यून सहशिक्षा के ही सामयिक शिक्षा प्रणाली का यह परिणाम हो रहा है तो सहशिक्षा का प्रवेश होने पर तो शायद अमेरिका की भांति यह भाव भी उदय न हो पावेगा कि पवित्र दाम्पत्य-जीवन भी भूमण्डल में कोई आदरणीय वस्तु है।

स्त्री शिक्षा की भी यदि आवश्यकता है, तो उस प्रकार की शिक्षा की नहीं है जो लड़कों की भांति उनको शिक्षित बनाना चाहती है और उन्हीं की भांति उनको फैशनपरस्त, आलसी और प्रमादयुक्त पेट के लिए दर दर भिक्षुक की भांति फिराना चाहती है। किंतु उस शिक्षा की आवश्यकता है जो उसे सच्ची गृहस्थ और सुशिक्षिता देवी बना कर अपनी सौम्यता, सभ्यता और सतीत्व द्वारा सीता-सावित्री की भांति आर्यावर्त के शिर को ऊँचा कर सकें। इस महत्त्व पूर्ण और नाजुक प्रश्न पर देश के शिक्षा-शास्त्रियों, लोक-नेताओं, माता-पिताओं और समाजशास्त्र के पंडितों को गौर करना चाहिए।

वैराग्य-साधन की उपयोगिता

लेखक—श्री स्वामी कृष्णानन्द जी

शास्त्रोक्त सकाम कर्म प्राकृत, निरंकुश, राग-मोह-प्रयुक्त स्वाभाविक कर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ, प्रशंसनीय तथा वरणीय है।

उपनिषदों में प्रजापति के प्रथम दो उपदेश दया तथा दान में सम्पूर्ण सकाम कर्म का समावेश है। इसके द्वारा मनुष्य मृत्यु अर्थात् निकृष्टतम कीट पतङ्गादि उन योनियों की अज्ञान तथा कष्टमय गति से बच जाता है, जो निरंकुश स्वाभाविक कर्म का अनिवार्य फल है। इसके द्वारा मनुष्य शास्त्रवर्णित पितृ आदि लोकों की मध्यम तथा उत्कृष्ट गति को प्राप्त होता है, परन्तु ये सब प्रकार की गतियां हैं सांसारिक। इसमें सन्देह नहीं कि इनका उपदेश प्रजापति ने ही किया, यह दृष्टि भी शास्त्रोक्त ही है। इस पर आरूढ़ हुए बिना और इसके अभ्यास से उपयुक्त सामर्थ्य प्राप्त किये बिना मनुष्य अन्य शास्त्रोपदेश के अनुसार आचरण नहीं कर सकता और उसके फल से वंचित रह जाता है। इस प्रथम शिक्षा अहिंसा तथा दान के बिना अन्यत्र किया गया सब परिश्रम निष्फल जाता है।

परन्तु दया तथा सामान्य दान मात्र पर ही जिसकी अध्यात्म दृष्टि रुक जाती है, सामान्य व्यवहार-शुद्धि में ही जो सामान्य कृतकृत्यता मान बैठते हैं, उनकी यह सन्तुष्टि अज्ञान मूलक होने से परम लक्ष्य की दृष्टि से अनर्थकारी है। यह कर्म संबन्धी शास्त्रदृष्टि निकृष्टतम मृत्यु की अवश्य असंदिग्ध अमृत रूपी औषधि है, परन्तु यह मृत्यु मात्र की औषधि नहीं।

इससे मनुष्य दिव्य, रमणीक, सुखद, दीर्घ-काल-स्थायी लोकों को प्राप्त होता है, परन्तु संसार मात्र का परिणाम-धर्म रूपी दोष तो वहां भी है अर्थात् पतन (मृत्यु) का अधिकार तो वहां भी रहता है। इसलिए परम लक्ष्य की सिद्धि के लिए मृत्यु तथा कष्टमय संसार से वैराग्य के द्वारा परम, अमृत, अनादि अनन्त भूमा आनंद की प्राप्ति किये निरायासस्थिति, अलंवृत्ति, परमतृप्ति असंभव है। जैसे पूर्व वर्णित हुआ है कि निष्काम कर्म यज्ञ, दान, तप आदि का अनुष्ठान भी पूर्वाभ्यासवश पाप तथा भोगतृष्णा के संस्कारों को क्षीण करके दृढ़ वैराग्य वैतृष्ण्य सम्पादन के लिए ही है, उसके बाद इसका भी (आध्यात्मिक साधन की दृष्टि से) कामना रहते हुए संसार-गति अनिवार्य है। (मुण्डक उपनिषद् ३-२-२)। वैतृष्ण्य (वैराग्य) से एक विलक्षण अनुपम शांति का अनुभव करता है जो भोगकामी को भोग के द्वारा कभी प्राप्त नहीं होती।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठम्
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न च कामकामी।
विहाय कामान् यः सर्वान् पुमाँश्चरति निस्पृहः
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥ २-६१

सब ओर से पूर्ण अचल ठहरे हुए समुद्र में जिस प्रकार सब ओर से नदियां प्रविष्ट होती है परन्तु उसे विचलित नहीं करती इसी प्रकार जिस स्थिरमति पुरुष के मन में चहुँ ओर से कामनाएँ प्रविष्ट होकर उसे विचलित नहीं कर पाती, वही शान्ति को प्राप्त होता है, कामनाओं को चाहने वाला नहीं।" जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर निस्पृह हो जाता है, वह ममता शून्य तथा अहंकार रहित व्यक्ति ही शान्ति को प्राप्त होता है।" महा-भारत, शान्ति-पर्व, ११,१७४, ४६

इन्द्रोऽपि न सुखी तादृक् यादृक् भिक्षु निस्पृह। कोऽन्य स्यादिह संसारे त्रिलोकी विभवे सति। महाभारत।

वैदिक तथा अवैदिक मोक्ष ग्रन्थों में परम शान्ति के साधन के रूप में वैराग्य को विशेष महत्त्व दिया गया है औ वैराग्य प्राप्ति के उपायों का भी सविस्तार निरूपण है। वैदिक ग्रन्थों के उपर्युक्त वचन इस विषय मे प्रमाण हैं।

ब्रह्मविद्या में वैराग्य का प्रयोजन

वैराग्य का ब्रह्म विद्या में क्या उचित स्थान है, इस विषय पर विचार करने की आवश्यकया है। श्री मद्भगवद्गीता तथा योगदर्शन में वैराग्य को चित्त के निरोध या मन के जीतने का उपाय बतलाया गया है। गीता (६–३६) में श्री कृष्ण भगवान् ने अर्जुन से कहा कि वायु के समान बलिष्ठ चञ्चल तथा प्रमथन शील स्वभाव वाले मन को अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा वश में किया जा सकता है, इस का अभिप्राय यह है कि केवल हठ प्रधान साधन इस कार्य के लिए पर्याप्त नहीं है। केवल हठ से तो मन के चञ्चला रूपी वेगों मे असहनीय वृद्धि हो जाती है, अत: इसके लिए दोष विचार रूपी वैराग्य की सहायता की भी आवश्यकता हैं। इसी विषय मे पतञ्जलि मुनि कृत योग-दर्शन के (सूत्र १–१५) निरोध उपाय विषय की व्याख्या में भगवान् व्यास वैराग्य तथा अभ्यास के भिन्न २ प्रयोजन वर्णन करते हुए वराग्य-रूपी साधन की अनिवार्यता, इस का ब्रह्मविद्या में विशेष प्रयोजन, स्थान, महत्त्व तथा उपयोग बतलाते हैं। योगदर्शन के सूत्र (१–१२) में कहा गया हैं—चित्त वृत्तियों के निरोध रूपी योग से द्रष्टा (आत्मा) की स्वरूप मे स्थिति होती है। चित्त वृत्तियों का निरोध अभ्यास तथा वैराग्य से होता है (योगदर्शन १–१२)। व्यास-भाष्य में इस संबध मे निम्न विवेचन हैं—चित्त निरन्तर वृत्ति प्रवाह रूप धारा होने से नदी के समान है, यह दो प्रकार से बहती है अर्थात् यह दो तरह गति कर सकती है। अथवा इसकी धारा दो भिन्न मार्गो का अनुसरण कर सकती है। यह चित्त-नदी कल्याण (इष्ट-मोक्ष) प्रवाह वाली अथवा पाप-प्रवाह वाली होती है। जो चित्त का प्रवाह आत्मानात्म-विवेक (प्रकृति पुरुष तथा देहादि अनात्मा तथा आत्मा) रूपी निम्न प्रदेश से कैवल्य मोक्ष रूपी प्रदेश पर्यन्त बहती है, वह कल्याण-वहा हैं, और जो आत्मानात्म-अविवेक रूपी

प्रदेश से संसार पर्यन्त बहती वह पाप-वहा है। वैराग्य से विषय-संसार-स्रोत को न्यून किया जाता है, सुखाया जाता है अथवा निरुद्ध किया जाता है और विवेक-दर्शन रूपी अभ्यास के द्वारा विवेक-स्रोत का उद्घाटन किया जाता है, उसका प्रवाह जारी किया जाता है। चित्त वृत्ति का निरोध इन दोनों उपायों के आधीन है, केवल एक से निर्वाह नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए एक ऐसा तालाब है जिसमें एक नाली से गंदा और दूसरी से शुद्ध जल गिरता है। तालाब में शुद्ध जल प्राप्त करना हो तो केवल शुद्ध नाली खोल देने या केवल गंदी नाली बन्द कर देने से काम नहीं चलता। उसके लिए तो दोनों नालियों का समुचित उपयोग करना होगा अर्थात् गंदी को बन्द कर देना और साथ ही शुद्ध को खोल देना होगा। वैराग्य के सम्पादन के बिना केवल नित्यानित्य वस्तु अथवा आत्मानात्म का शुष्क (विवेक) विचार बोध रूपी फल को उत्पन्न करने तथा शोक मोह की निवृत्ति तथा परम तृप्ति उत्पन्न करने में असमर्थ है। वैराग्य न हो तो अन्य विचार क्षेत्र में अभ्यास के द्वारा, सूक्ष्म तथा तर्कादि से दक्ष बुद्धि के आधार पर, आत्मानात्म विचार, आत्मानात्म विषय शास्त्र के श्रवण मनन की योग्यता तथा अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। ऐसा विचार निष्फल तो होता ही है, साथ साथ वह महान् अनर्थ का हेतु भी बन जाता है, जैसे अबोध बालक के हाथ में तीक्ष्ण चाकू हो जाता है। सांख्य (३-३६) "वैराग्यादभ्यासाच्च" का भी यही भाव है।

ऋभुओं के विचित्र चार कार्य

लेखक—श्री जयपाल

ऋग्वेद में ऋभुओं के चार विचित्र कार्यों का वर्णन आता है। सामान्यतः देखने से ये कार्य बड़े ही अद्भुत और असम्भव से प्रतीत होते हैं, परन्तु वस्तुतः वे आज बीसवीं सदी के वैज्ञानिक युग से पूर्णतः मेल खाते हैं। इसके साथ साथ आज के आश्चर्य में डाल देने वाले आविष्कार एकदम नवीन तथा पाश्चात्य की ही देन नहीं हैं—इस बात में भी ऋभुओं के ये कार्य प्रमाण हैं।

ऋभुओं के चार कार्यों में से पहला कार्य है एक रथ का निर्माण करना। मन्त्र इस प्रकार है—

"अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो ३ रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः। महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ"॥

(ऋक् ४-३६-१)

अर्थात् हे ऋभुओं! तुम्हारे द्वारा एक रथ का निर्माण हुआ है। जिसमें न घोड़ा है, न लगाम है, जो प्रशंसा योग्य है, तीन पहियों वाला है, आकाश में चक्कर काटता है। तुम्हारे यह महान् कार्य तथा जो तुम द्यावा-पृथिवी अर्थात् माता-पिता को परिपुष्ट करते हो वह काम, तुम्हारी दिव्यता का परिचायक है। (शेष पृष्ठ १८५ पर)

हमारी गौण वन-सम्पत्ति

श्री अनूकूल चन्द्र दे तथा श्री रमेश चन्द्र नैथानी

तैल बीज—कुछ वृक्षों के बीजों से उत्तम तैल प्राप्त हो सकता है। ये तैलबीज यद्यपि तिल, सरसों, तोरिया और अलसी के समान महत्वपूर्ण नहीं हैं फिर भी वर्तमान शिल्पों में इनका उच्च स्थान है। साबुन के व्यवसाय में महुवा, कुसुम, फुलवा, नीम आदि बीजों के तैल उपयोग में आते हैं। इसी प्रकार वनस्पति तैल के लिए भी महुवा, फुलवा, शाल, औषधि के लिए नीम आदि है। वसायुक्त तैल में ताल चर्बी, चौंड़, कोकम, पीसा तैल और उसी वर्ग के तल सम्मिलित हैं। ये तैल नारियल के तैल के समान उच्च टेनोपिक तेजाब युक्त हैं जो साबुन बनाने के लिए बहुत अच्छा है। जहां भारी पानी (hard water) या समुद्री पानी है वहां इन तैलों द्वारा बनाया हुवा साबुन बहुत ही उपयोगी है। रोगन के लिए वनज-वृक्ष बीज के कमीला तैल, अखरोट का तैल, तथा भंग जीरा तैल कृषिजन्य अलसी बीज के तैल के समान ही उपयुक्त हैं।

बिरोजा, तैल, बिरोजा तथा गोंदिल-तैल-बिरोजा— बिरोजा भारत की मुख्य गौण वन सम्पत्तियों में से है। इससे वनज विभाग को अच्छी आय होती है। लाख एक अन्य मुख्य गौण वन सम्पत्ति है। यह रंग रोगन शिल्प तथा विद्युत धारा अवरोधन में बहुत काम आती है। चीड़ वृक्ष का बिरोजा हिमाचल प्रदेश की एक मुख्य वनसम्पत्ति है। इस बिरोजे से वाष्पीय तैल, तार्पीन और रोजिन आदि निकाला जाता है। भारत में रोजिन का सबसे बड़ा और पुराना कारखाना बरेली में है। पञ्जाब, जम्बू और उत्तर प्रदेश का यह मुख्य शिल्प है। शलाई-तैल बिरोजा, गन्ध बिरोजा, साल की राल, गुर्जन की राल अञ्जन का तैल बिरोजा हमारे वनों से प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है।

बिरोजा पानी में नहीं परन्तु सुषव में पूरी तरह घुलनशील है। इसका उपयोग रंग रोगन में, बरसाती बनाने में और औषधियों में होता है। लाख बनाने, अगरबत्ती बनाने तथा इत्र बनाने में भी यह काम में लाया जाता है।

गोंद तथा लसदार पदार्थ— कीट द्वारा छेदन से अधिक ताप के कारण काण्ड-रेशे फटने से जो छेद वृक्षों में हो जाते हैं उनको बन्द करने या ढकने के लिए वृक्ष के कोष्ठों से स्वतः ही गलित रस निकल आता है जो सूखने पर गोंद बन जाता है। यह गोंद फिर एकत्र कर लिया जाता है। गोंद का उपयोग सब ही भलीभांति जानते हैं। वह कागज चिपकाने के अतिरिक्त सूती कपड़ों में छापने के लिए, भोजन में, औषधि में, इमारती मसाले बनाने और सुफेदी में काम आता है। भारत के मुख्य गोंद—बबूल गोंद, कीनों गोंद, ढाक या पलाश गोंद, कतीरा गोंद, घाटी गोंद और सेमल गोंद आदि हैं।

रङ्ग— भारत में विदेशों से कृत्रिम रंग के आयात से पहले भेषज रंग का प्रचन था। अब भी बहुत से भेषज-रंग-पदार्थ इस क्रिया के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं। खाद्य पदार्थों के रंगने के लिए भेषज रंगों का प्रयोग किया जाता है। केसर, लालमिर्च, आदि इसी प्रकार की वस्तुएं हैं। वन अनुसंधान शाला, देहरादून

की रसायन शाला में वनस्पति घी को रंगने के लिए कुछ वन पदार्थों के हरे रंगों(क्लोरोफिल) की खोज की गई है। लाल चंदन, कत्था, कमीला (रोहणी), ढाक (पलाश), हर-सिंगार, चम्पा, रतनजोत, मजीठी, दारु हरिद्रा, आदि वन-पदार्थ रंगों के लिए अब भी हमारे उपयोगों में आते हैं।

चर्म शोधक पदार्थ— भेषज्य कषाय चर्म शोधन के लिए एक प्रमुख वस्तु है। यह चर्म शोधक प्रायः उद्भिजों में पाया जाता है परन्तु औद्योगिक दृष्टिकोण से इने गिने वृक्ष ही इस के उपयुक्त हैं। यह कषाय वृक्ष में मुख्यतः छाल, पत्तों, काष्ठ और फलों में निहित हैं। कषाय द्वारा चर्मशोधन भारत का पुरातन शिल्प है। हमारे वनों में लगभग तीन सौ कषाय-युक्त वृक्ष हैं। इनमें से केवल बबूल हरड़ अभारम छाल तथा काला बबूल ही अधिकतर उपयोग में आते हैं। कोल बबूल की प्राप्ति हमारे वनों में अपर्याप्त है। इस कारण यह दक्षिणी अफ्रीका से आयात किया जाता है। बबूल की छाल चमड़े को गाढ़ा रंगीन तथा कर्कश बनाती है जब कि हरड़ मिलाने से चमड़ा मुलायम, चिकना तथा मजबूत हो जाता है। इसी प्रकार कितने ही मिश्रित कषाय उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। देश के मुख्य कषाय आमला छाल, बहेड़ा, धावड़ा या धौवा पत्ता, डिभि-डिभि फलियां, गोथर छाल, अर्जुन छाल, करौंधा के पत्ते, गोरण छाल, सैन छाल, साल छाल, अमलतास छाल, बाजफल छाल आदि हैं।

कत्था —वन विभाग के लिए आर्थिक दृष्टि से कत्थे का मुख्य स्थान है। यह खैर वृक्ष से जो कि प्रायः सभी जंगलों में विशेष-तया पहाड़ों में पाया जाता है, प्राप्त किया जाता है। सुंदरा वृक्ष से जो कि दक्षिण के पहाड़ों में पाया जाता है कत्था और कषाय कच निकाला जाता है। खैर या सुंदरा वृक्ष के सार काष्ठ की पतली २ धज्जियां की जाती हैं। इनको फिर पानी में रंग निकलने तक उबाला जाता है। इस रंगीन पानी को दुबारा उबाल कर गाढ़ा कर लिया जाता है। इस गाढ़े सत के ठंडे होने पर भारी पदार्थ नीचे बैठ जाता है; जो कत्था कहलाता है और छान कर अलग कर लिया जाता है। बचे हुए रंगीन पानी को फिर उबाल कर गाढ़ा कर लिया जाता है जो कि ठंडा होने पर जम जाता है। यह "कच" कहलाता है।

कत्था केवल पान खाने के काम में आता है। कच खाकी रंग के कपड़े रंगने, मछली पकड़ने के जाल रंगने तथा समुद्री बेड़ों के रस्सी तथा पाल आदि रंगने के काम आता है। इससे रंगने से कपड़े मजबूत भी हो जाते हैं जिससे समुद्री पानी का अधिक प्रभाव नहीं होता। कुछ कच विदेशों को भी निर्यात किया जाता है। कच और कत्था वैज्ञानिक पद्धति से भारत में केवल (१) इण्डियन वुड प्रौड-क्टस, आइजतनगर, बरेली और (२) ग्वा-लियर वन उपज, ग्वालियर के कारखानों में बनाया जाता है। शेष सारे भारत में देशी तरीकों से ही बनाया जाता है। देशी तरीकों द्वारा कच नष्ट हो जाता है और इस तरह लाखों की हानि प्रति वर्ष भारत को होती है।

कोयला—लकड़ी जला कर कोयला बनाना पुराना शिल्प है। लकड़ी के टुकड़ों की अंगार बना कर ऊपर से मिट्टी घास फूस से ढक कर रखने से वह जलते हुए अंगार हवा के अभाव से राख के स्थान पर कोयला बन जाता है। वायु का नियमित शासन ही कोयला बनाने का रहस्य है। वैज्ञानिक ढंग से कोयला बनाने के कई साधन हैं जैसे अनावृत भट्टी और लोहे की भट्टी। भारत में अधिकतर देशी भट्टियों से ही कोयला बनाया जाता है। वन अनुसंधान शाला, देहरादून द्वारा आविष्कृत "फ्राइ क्लिन" लोहे की चद्दरों से बनी हुई भट्टी है। जिसको खोल कर पर्दों को अलग २ किया जा सकता है और आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाया जा सकता है। उत्तम श्रेणी का कोयला बनाना आंच और हवा की रोक थाम की विधि पर निर्भर करता है।

लकड़ी का कोयला ईंधन में लकड़ी का पूरक रहा है। धातुओं के गलाने के लिए इस का ईंधन अच्छा माना जाता है। मोटर आदि चलाने में पैट्रौल के स्थान पर भी काम आता है। विगत युद्ध में जब कि पैट्रौल दुष्प्राप्य था इसका उपयोग करके गैस द्वारा गाड़ियां चलाई गईं।

लकड़ी के धुंए को ठंड पर जमाने से तारकोल, एसिटिक तेजाब, तथा मिथाइल सूषव जैसे पादार्थ उपलब्ध होते हैं। इन पदार्थों को इकट्ठा करने के लिए कीमती मशीनों की आवश्यकता है तथा इन्हें बनाना भी व्ययसाध्य है। इस कारण हमारे देश में इसका लाभ नहीं उठाया जा सका। विदेशों में बड़ी निर्माणशालाओं के साथ इनके भी यन्त्र लगाने से इन्हें बनाना सम्भव है।

लकड़ी के कोयले का प्रयोग लोहे जैसी धातु गलाने के लिये भारत में केवल मैसूर के भद्रावती कारखाने में ही किया जाता है।

लकड़ी का कोयला भंगुर होने के कारण अधिक टूटता है। जहां कोयला बनाया जाता है ३० प्रतिशत तो वहीं टूट फूट जाता है और ३० प्रतिशत कोयले के गोदाम में चूर्ण हो जाता है। इस प्रकार ६० प्रतिशत कोयला बेकार हो जाता है। परन्तु निराश न हों, यह यों ही फेंक देने वाली वस्तु नहीं है। इस चूरे को बन्धन पदार्थ के द्वारा टिकियां बना कर सदुपयोग का बनाया जा सकता है। जो लकड़ी बहुत ही कमजोर होती है और किसी भी उपयोग में नहीं आ सकती उसका भी कोयला बना कर काम में लाया जा सकता है।

बहुत से घरों में कोयले के चूरों को गोबर के साथ गोले बना कर सुखा लेते हैं जो कि सूखने पर ईन्धन का काम देते हैं। इससे कुछ ईंधन की बचत हो जाती है। कहीं कहीं कोयले के बारीक चूर्ण को चावल के श्वेतसार के साथ मिला कर टिकियां बना ली जाती हैं जो तम्बाकू पीने वालों के लिए सरल व्यवहार्य होती हैं। पाश्चात्य देशों में टिकियां बनाने के लिए शिकञ्जे होते हैं जिनके द्वारा दिन में ६ मन से १० मन तक टिकियां बनाई जा सकती हैं। टिकियां बनाने के लिये वहां चावल के श्वेतसार के बदले ४ से ७ प्रतिशत

गोंद या कोई लसदार पदार्थ मिलाते हैं।

चीड़ पदार्थ–चीड़ वृक्ष में बिरोजा अधिक होता है। चीड़ के पेड़ काट लिए जाने के पश्चात् इनकी ठूंठ को जो जङ्गल में बेकार पड़े रहते हैं बंद भट्टी में जलाकर तार नामी पदार्थ निकाला जाता है। इससे कई प्रकार की औषधियां तथा लकड़ी संरक्षण की क्रियनेज़ोट जैसी महत्वपूर्ण वस्तुएं प्राप्त होती हैं।

टोकरी बनाने का सामान–टोकरी की उपयोगिता सबको ही विदित है। घरों से लेकर बड़े कारखानों और खदानों तक इसकी आवश्यकता है। मजबूत टोकरियों के लिये अच्छे बेत का उपयोग होता है। परन्तु साधारण कामों के लिए टोकरियां बनाने में बेल तथा शहतूत की टहनियां, रिंगाल और बांस भी काम में लाये जाते हैं।

भेषज साबुन–प्राचीन काल में भारत में साबुन के स्थान पर वृक्ष के छाल, फल और पत्तों से लोग अपने अंग प्रत्यंग, कपड़े तथा आभूषण आदि साफ किया करते थे। इस काम के कितने ही भेषज पदार्थ बनों में पाये जाते हैं। इन पदार्थों का चूर्ण जब पानी अथवा तैल में मिलाया जाता है तो इनसे साबुन जैसा फेन निकलता है। यह पदार्थ रेशमी वस्तुओं का परिष्कार करने, बालों के धोने आदि में काम आता है। कीड़टन तरल, आग बुझाने, पीतल पर पालिशतथा दन्त मंजन के लिए भी उपयोगी है। रीठा, शीकेकाई, अढ़ाई के बेल की छाल, आमल बेल छाल, राम बांस के पत्तों का रङ्ग, काला शिरस की छाल आदि मुख्य वन भेषज साबुन हैं।

बुरादा तथा लकड़ी के कतरन–लकड़ी के बड़े २ कारखानों, आराघरों में लकड़ी की कतरन तथा बुरादा बेकार जाता है अथवा केवल ईन्धन की तरह जलाने के काम आता है। परन्तु आज बुरादे की विशेष उपयोगिता सिद्ध हो रही है जब कि यह प्लास्टिक जैसे आधुनिक शिल्प में प्रयुक्त होने लगा है और उससे सुधरे हुए ढंग से ईन्धन रूप मे काम लाने के लिय अंगीठी विशेष का आविष्कार हो गया है और गोलियां बनाकर आग का काम लिया जाने लगा है। बुरादे और कतरनों से कृत्रिम तख्ते आदि बनने लगे हैं।

चटाई, दरियां और आसन–प्राचीन काल से ही हमारे देश में कुश आसन का प्रयोग होता है। अब भी हिन्दू गृहों में पूजापाठ, विवाह आदि और भोजनादि के लिए कुशासन पर ही बैठने की रीति है। बंगाल का मादूर और शीतलपाटी, मद्रास का कोरा घास की मसृण चटाइ अति प्रसिद्ध हैं। बरेली और शाहजहांपुर की मूञ्ज की चटाई भी इनसे कुछ कम नहीं। यह हमारे देश की वन-सम्पति से ही प्राप्त हैं। इतना सब कुछ होते हुए भी हम लाखों रुपयों की चटाइयां विदेशों से आयात करते हैं। हमारे देश में चटाई की मुख्त २ वन-सम्पति रिंगाल, बांस, ताड़ के पत्ते, कुश, बेत, कोरा घास, भाबर घास, मूञ्ज, खजूर के पत्ते, केवड़े के पत्ते, नाल घास, शीतलपाटी, पटेर घास आदि हैं।

शोला–यह एक छोटा क्षुप है जो बंगाल, आसाम, और दक्षिणी भारत के दलदलों में बहुत पाया जाता है। ❀

वैज्ञानिकों से निर्मित यह रथ सामान्य रथ न होकर वायुयान के सिवाय और क्या हो सकता है ? यहां यह शंका हो सकता है कि वेदों में इतिहास है परन्तु इसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि राष्ट्र में जो मेधावी वैज्ञानिक पुरुष हैं उन्हें ऐसे रथ के निर्माण करने का प्रयत्न करना चाहिए। वेद में सम्पूर्ण ज्ञान केवल बीज रूप में ही है। वेद ने हमें यह सुझा दिया है कि ऐसी कोई चीज बन सकती है। आगे प्रयत्न करके ऐसी चीज का निर्माण करना हमारा काम है। प्राकृतिक दृष्टि से ऋभु हैं सूर्य की किरणें और रथ है मेघ। तीन पहिये हैं-विद्युत, वायु और जल वाष्प। सूर्य किरणें ही वाष्पिकरण के द्वारा जल को आकाश में खींच कर मेघ का निर्माण करती हैं।

ऋभुओं का दूसरा कार्य ऋग्वेद में इस प्रकार वर्णित हुआ है कि उन्होंने वृद्ध हुए २ माता-पिता को जवान बना दिया है। मंत्र इस प्रकार है—

> तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन् महित्वम्। जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥ ऋक्० ४-३६-३ ॥

अर्थात्, हे वाज और विभ्वा ऋभु लोगो वह तुम्हारा महत्व का कार्य देवों में खूब प्रशंसा का विषय बन गया है। जो तुमने चिर काल से जीर्ण बूढ़े माता पिता को चलने फिरने के लिए फिर से युवा कर दिया है। यहां पर यह सन्देह हो सकता है कि वृद्ध पुरुषों का जवान होना प्रकृति नियम के विरुद्ध है। यह कदापि नहीं हो सकता। परन्तु वास्तव में इस मंत्र का अभिप्राय केवल इतना ही है कि बुद्धि निष्पन्न ऋभुलोगों ने किसी ऐसी औषधी अथवा पाकादि का बड़ी खोज के बाद निर्माण किया है जिस के सेवन से वृद्ध पुरुषों में भी पुनः जीवन शक्ति आ जाती है। आज भी आम्रकल्प दुग्धकल्प आदि ऐसे कल्प हैं जिनके करने से वृद्धों में भी जवानों की भांति जीवन शक्ति का संचार होने लगता है। अनेक आयुर्वैदिक तथा ऐलोपैथिक औषधियों का भी आविष्कार हो चुका है, जिनके सेवन से मनुष्य में अपूर्व शक्ति आ जाती है। इस प्रकार समाज के हित के लिए ऐसी औषधि एवं रसायनादि का निर्माण करना वैज्ञानिक ऋभुओं का दूसरा कार्य है।

तीसरा और चौथा कार्य—ऋभुओं ने बड़े विज्ञान पूर्वक एक चमस को चतुर्वय किया है। और चमड़े से गाय बनाई है। मंत्र इस प्रकार है—

> 'एकं विचक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः। अथा देवेष्वमृतत्वमानशुः श्रुष्टी वाजा ऋभवः तद्व उक्थ्यम्" ॥ ऋक्० ४-३६-४ ॥

अर्थात् तुमने एक चमस को चतुर्वय कर दिया, और अपने बुद्धि के बल से चमड़े से गौ को जीवित कर दिया। इस प्रकार शीघ्र ही तुम ने देवों में अमृतत्व को पा लिया है। हे वाज ऋभुओं ! तुम्हारे ये कार्य बड़े ही प्रशंसा योग्य हैं।

चमस को चतुर्वय करने का अभिप्राय— ऋक्० १-२०-६ में कहा गया है कि हे ऋभुओं! तुमने त्वष्टादेव से निर्मित चमस को चार भागों में विभक्त कर दिया है। पौराणिक साहित्य के अनुसार त्वष्टा देवों का शिल्पि है। अतः राष्ट्र में हम बड़े उत्तम अनुभवी एवं अत्यन्त चतुर कारीगर को त्वष्टा कह सकते हैं। उस कारीगर ने एक चमस अर्थात् पात्र बनाया है। चमन्ति अस्मिन् इति चमसः। चमु धातु, धातु पाठ में भक्षण अर्थ में पठित है। अतः चमस् हम किसी ऐसे पात्र को कह सकते हैं, जिस में भक्षण सामग्री रखी जाती हो। शिल्पि त्वष्टा ने पात्र बड़ा कला पूर्ण बनाया है। ऋभुओं ने उसी पात्र में कुछ और हेर-फेर करके उस में ऐसी विशेषता ला दी है जिस से कि अब वह चार भागों में विभक्त हो गया है। पहले जिस पात्र में केवल एक ही वस्तु रखी जा सकती थी उसी पात्र में अब विभिन्न प्रकार की चार चीजे सुरक्षा पूर्वक रखी जा सकती हैं। अथर्व वेद में एक "चतुर्बिल कलश" का वर्णन आता है। यह एक ऐसा कलश है जिस में चार बिल अर्थात् चार टूटियां लगी हुई हैं। ऊपर से देखने में वह एक ही पात्र लगता है किंतु अन्दर बड़ी कुशलता से उसके चार हिस्से किए होते हैं। जिनमें हम अलग २ वस्तु भर सकते हैं और तब चारों टूटियां खोलने से प्रत्येक में से अलग २ प्रकार की वस्तु निकलेगी। ऋभुओं का "चतुर्वय चमस" और यह "चतुर्बिल कलश" एक ही पदार्थ प्रतीत होता है।

प्राकृतिक दृष्टि से "चमस्" शब्द निघण्टु में बादल वाची शब्दों में पठित है। और ऋभु हैं सूर्य की किरणें। सूर्य की किरणों ने बादलों को बरसा कर चारों दिशाओं के चार सरोवरों में फैला दिया है। यह है चमस मेघ का चतुर्वय करना। तीसरे "चमस" शब्द वेद मे मस्तिष्क के लिए भी आता है। इसे चार भागों में विभक्त करने का अभिप्राय है चार वर्णों में बांटना। विज्ञान वान ऋभुओं ने बड़े ही विचार पूर्वक यह बात पता लगाई है कि यदि मानव समाज को चार वर्णों ब्राह्मण-क्षत्रीय-वैश्य और शूद्र में बांट दिया जाए तो इस से राष्ट्र की बड़ी उन्नति हो सकती है।

चौथा भाव ग्रिफिथ ने अपने भाष्य में हिलेब्रैन्ट की वैदिक पायथोलोजी से उद्धृत करते हुए लिखा है कि चमस् है चन्द्रमा जिस में अमृत भरा हुआ है। त्वष्टा है संवत्सर का देव। त्वष्टा ने तो चन्द्रमा को एक सा चमकीला बनाया था परन्तु ऋभुओं अर्थात् ऋतुओं के देवों ने उसे चार रूपों वाला कर दिया है। यह देखते ही हैं कि सारे साल भर चन्द्रमा की एक समान चमक नहीं रहती। शरद् ऋतु में उसका एक रूप होता है। हेमंत शिशिर में दूसरा। वसंत और ग्रीष्म में तीसरा और फिर वर्षा ऋतु में चौथा रूप। यह ऋभुओं का तीसरा महत्व पूर्ण कार्य है।

ऋभुओं का चौथा कार्य है चमड़े से गाय बनाना। इससे प्रकट होता है कि ऋभुओं ने आयुर्वेद और शल्य चिकित्सा की कितनी खोज की है। एक गाय है जो कि चर्मावशेष

रह गई है। उसे पुनः स्वस्थ करके ऋभुओं ने चलने फिरने योग्य और दूध देने योग्य बना दिया है उसके बछड़े को फिर से उसके साथ संयुक्त कर दिया है। यह स्वस्थ करने की पद्धति ऋक्० १-१६१-१०- में अधिक खोल कर वर्णित की गई है। वहां आता है कि एक गाय लंगड़ी हो गई है और चिकित्सा न होने से तथा भोजनादि न मिलने से अस्थ्यवशेष रह गई है। ऋभु-विभु-वाज इन तीनों ने मिलकर उसकी चिकित्सा की है। इनमें से एक उसके लिए पानी लाया है। दूसरे ने शल्य क्रिया के शस्त्रों से मांस काट कर अलग किया है, और तीसरे ने उसके अन्दर से मल को निकाल कर साफ किया है। इस प्रकार अच्छी चिकित्सा होने से शनैः २ वह गाय स्वस्थ हो गई है।

गौ को स्वस्थ करने के इस कथानक का एक दूसरा भाव भी हो सकता है। गौ का अर्थ पृथिवी लिया जा सकता है। बहुत दिनों से वर्षा न होने के कारण भूमि सूख कर बञ्जड़ हो गई है। इसी को हम चर्मावशेष भी कह सकते हैं। इस अवनि को फिर से दोग्धी अर्थात् हरी-भरी करना है ऋभुओं में से एक कृत्रिम साधनों ट्यूबवैल्स आदि के द्वारा पानी लाया है। दूसरे ने उसकी खूब जुताई की है। तीसरे ने अपनी बुद्धि से उत्तमोत्तम खादें अमोनियम गन्धित (NH_4 SO_4) आदि का आविष्कार करके उन्हें ठीक प्रकार से भूमि में डाला है। इस तरह भूमि पुनः शस्य श्यामला हो गई है। वृक्ष वनस्पति आदि को हम अवनि के वत्स कह सकते हैं जिन से कि भूमि अब युक्त हो गई है। यह है ऋभुओं का चौथा महत्व पूर्ण एवं समाज में उन्हें अमर कर देने वाला कार्य।

(पृष्ठ १८८ का शेष)

इस मंत्र में परमेश्वर के तीन नाम बताए गए हैं। वह परमेश्वर

१. (भोजः) सबको भोजन देने वाला है अगर तुम भी वैसे बनना चाहते हो तो (क्रतुमिच्छत) काम करो ८-७८-७ में भी कहा है कि (क्रत्वइत्पूर्णमुदरम्) पेट कर्म के द्वारा ही भरता है।

२. वह (सूरिः) सबको प्रेरणा देने वाला है, अगर तुम भी वैसे बनना चाहते हो तो (क्रतुमिच्छत) प्रज्ञा = बुद्धि की कामना करो। जब तक स्वयं बुद्धिमान नहीं बनोगे दूसरों को भी प्रेरणा नहीं दे सकोगे।

३. वह (अद्वयः) कभी किसी से पराजित नहीं होता, दुष्टों के सामने झुकता नहीं, कोई ऐसा काम नहीं करता कि पीछे लज्जित होना पड़े; अगर तुम भी ऐसे बनना चाहते हो तो (क्रतुमिच्छत) संकल्प की इच्छा करो सच्चे संकल्प करने वाले बनो। जो आदमी दृढ़ और सच्चे संकल्प करने वाला है, वह कभी बुरा काम नहीं करेगा, किसी प्रलोभन के आगे नहीं झुकेगा और किसी से पराजित नहीं होगा। शब्दार्थ–क्रतुः–कर्म–प्रज्ञा–संकल्प। स्तुति–शब्दात्मक स्तुति। उपस्तुति–कर्ममय स्तुति। पुरुहन्मा–(हन हिंसागत्योः) बहुत गति करने वाला। ❀

ईश्वर की स्तुति कैसे करें ?

श्री मनोहर विद्यालङ्कार

सखायः क्रतुमिच्छत कथा राधाम शरस्य।
उपस्तुतिं भोजः सूरियो अह्रयः॥ ऋक्० ८-७०-१३
पुरुहन्मा ऋषिः। इन्द्रः देवता। उष्णिक् छन्दः।

भूमिका—परमेश्वर के कुछ भक्तजन एकत्रित हुए। वे नित्य नियम से पूजापाठ, भजन कीर्तन किया करते थे, किंतु उनकी स्तुति कभी स्वीकार नहीं होती थी। उन्हें सदा यही प्रतीत होता था कि परमेश्वर उन पर न केवल प्रसन्न नहीं है, अपितु रुष्ट रहता है। उनकी समझ में नहीं आता था, कि उनकी स्तुति में क्या कमी रह जाती है, जो उनकी प्रार्थनाएं पूरी नहीं होतीं। इस के विपरीत नास्तिक जन-जो कभी संध्या-पूजा नहीं करते, उन्नत और समृद्ध होते जाते हैं।

जब उनकी समझ में कुछ न आया तो वे लोग, पुरुहन्मा ऋषि के पास पहुँचे, और अपने अन्दर उठ रही विचिकित्सा को दूर करने के निमित्त प्रश्न किया—"हे भगवन् आप ही हमारी शंका का निवारण कीजिये, और बतलाइये कि हम भक्तों को दुःख देने वाले उस ऐश्वर्य-शाली परमेश्वर की स्तुति कैसे करें। हम तो उसकी स्तुति करते करते थक गए, लेकिन हमारी कुछ सुनवाई नहीं होती। हम वैसे के वैसे गरीब बने हुए हैं, जबकि दूसरे लोग, जो परमेश्वर का नाम तक नहीं लेते आनन्द भोगते हैं, और मौज उड़ाते हैं।',

और कहा यह जाता है कि वह परमेश्वर सबको और विशेष कर अपने भक्तों को भोजन देने वाला है, सबको उत्पन्न करने वाला, प्रेरणा देने वाला और सन्मार्ग को दिखाने वाला है, तथा किसी से पराजित नहीं होता, दुष्टों के सामने झुकता नहीं।

इस पर पुरुहन्मा ऋषि ने कहा कि इसका रहस्य मैं बताता हूँ। मैं अपने सारे जीवन के अनुभव के आधार पर यह बात कह रहा हूँ। तुम इस पर विचार करो, और अमल करो। तुम्हारी स्तुति भी परमेश्वर के पास पहुँचेगी, और तुम आनन्द भोगोगे और मौज करोगे।

दोस्तो, मेरी बात को मामूली या किसी सामान्य आदमी की बात मत समझना। यह बात मेरे जीवन का सार है। मैं अपने सारे जीवन भर कुछ न कुछ करता रहा हूँ, कभी निठल्ला नहीं बैठा। सदा गतिमय रहा हूँ। बल्कि मेरी इस प्रवृत्ति के कारण लोगों ने मेरा नाम ही बहुत गति करने वाला = पुरुहन्मा = चक्रचरण = फिरकनी, रख दिया है। मेरा असली नाम तो अधिकतर लोग जानते ही नहीं हैं।

सच्ची स्तुति का रहस्य यह है कि 'क्रतुमिच्छत' कर्म की इच्छा करो। केवल संध्या, भजन, पूजापाठ से कुछ नहीं होता। तुम्हारी जो इच्छा या कामना है, उसे पूरा करने के लिए कुछ कर्म करो। मतलब यह कि परमेश्वर की सच्ची स्तुति शब्द से नहीं कर्म से होती है, कथनी से नहीं, करनी से होती है।

अर्थ प्रश्न-(शरस्य) 'शृ हिंसायाम्' भक्तों को दुःख देने वाले की (उपस्तुतिं) स्तुति (कथा राधाम) किस प्रकार सिद्ध करें ? जो (भोजः) सबको भोजन देने वाला तथा (सूरिः) प्रेरणा देने वाला है और (अह्रयः) अपराजित रहने वाला है। उत्तर—(सखायः क्रतुमिच्छत) मित्रो, काम करने की इच्छा करो। (शेष १८७ पृष्ठ पर)

गुरुकुल-समाचार

ऋतु-रंग

प्रकृति में ऋतु परिवर्तन के दृश्य एकदम दृष्टि गोचर होने लगे हैं। पतझड़ के पश्चात् वनकुञ्जों में नई बहार आरही है। वृक्षों की डालियां नए नए हरित स्निग्ध पल्लवों से शोभित हो रही हैं। वातावरण में भी ताजगी और प्रफुल्लता आरही है। दिन गरम हो चले है। परन्तु रातें और प्रभात अभी तक शीतल हैं। माघ महीने में वातावरण की अधिक से अधिक शीतलता चार शतांश तक रही। गंगा जल १० शतांश तक पहुंच गया। माघ में अधिक से अधिक गर्मी का मान २३ शतांश मध्याह्न के समय रहा है। बीच बीच में बादलों की धूप छांह भी होती रही है। गुरुकुल की गेहूँ की खेतियां खूब लहरा रही हैं। उनमें बालें आगई हैं। सरसों की रौनक जाती रही। अब उनकी फलियां पक रही है। पलाश-पुष्प वासंतिक वैभव की सूचना देने लगे हैं। इस साल आम्रकुञ्ज बौरों से लद गए हैं। शीत कम होते ही प्रवासी पंखियों के दर्शन सुलभ होगए हैं। फरवरी के प्रथम सप्ताह से पपीहे के आलाप प्रारम्भ होगए हैं। परन्तु अभी तक आम्रकुञ्जों में कोकिल का कूजन नहीं आरम्भ हुआ है। मौसमी फलों में सेऊ बेर और रस-भरी की बहार है। कुलवासियों का स्वास्थ्य सुहावना है।

वार्षिक परीक्षाएँ

विश्वविद्यालय की वार्षिक परीक्षाएँ दूसरे मार्च से प्रारम्भ हो चुकी है। सब विद्यार्थी आजकल अध्ययन में खूब दत्तचित्त हैं। ये परीक्षाएँ २० तक समाप्त हो जावेंगी। क्रियात्मक और मौखिक परीक्षाएं तो समाप्त हो चुकी है।

कुल में केम्ब्रिज के प्रोफेसर

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के एक प्रोफेसर रोनाल्ड मार्टिन स्मिथ महोदय पिछले दिनों विशेष रूप से गुरुकुल में पधारे। आप भारत के उन शिक्षालयों और शोध-संस्थाओं का निरीक्षण कर रहे हैं जहां संस्कृत भाषा और साहित्य का अध्ययन, अनुशीलन, और अनुसंधान कार्य होता है। आपके सम्मान में एक स्वागत सभा का आयोजन किया गया। गुरुकुलाचार्य श्री पं० प्रियव्रत जी और संस्कृत के उपाध्याय श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार ने संस्कृत में आपका स्वागत और अभिनंदन किया। प्रो० नन्दलाल जी खन्ना ने अंगरेजी में आपकी संवर्धना करते हुए गुरुकुल की स्थापना तथा इसके कार्य-कलापों के इतिहास से आपको परिचित किया। इसके अनन्तर महाविद्यालय विभाग के छात्रों ने संस्कृत में एक वाद विवाद किया। उसका विषय था संयुक्त राष्ट्रसंघ विश्व शांति स्थापित करने में कृतकार्य हुआ है या नहीं। आपने अपने स्वागत का उत्तर देते हुए कहा—

"आपने अपनी गौरव पूर्ण सांस्कृतिक भाषा के साथ जीवित संपर्क बनाया हुआ है, यह बड़े आनंद का विषय है। मैंने अपने जीवन में संस्कृत भाषा को इस प्रकार सहज और अस्खलित रूप में बोलते हुए कभी नहीं नहीं सुना। संस्कृत एक पूर्ण भाषा है। ध्वनि शास्त्र की दृष्टि से भी वह बहुत महिमामयी है। संस्कृत का शब्द भंडार इतना विशाल और गूढ़ अर्थों का वाहक है उसके पारिभाषिक शब्दों का विशेषतः दार्शनिक शब्दों

का अंगरेजी में पूर्ण अर्थवाही अनुवाद करना असंभव सा है। हाँ, लैटिन और फ्रैंच भाषा संस्कृत शब्दों के भावों को पर्याप्त रूप में अनुवाद में परिणत कर सकती हैं। आपने "मनस्" और "क्रतु" आदि शब्दों के उदाहरण देते हुए इस बात को विशेष रूप से स्पष्ट किया।

आगे आपने कहा—"संस्कृत साहित्य और दर्शनशास्त्रों में जिस उदात्त जीवन दर्शन की परिकल्पना हुई है उसी के कारण भारतीय जीवन में मानसिक शांति और चरित्र की ऊर्ध्वगामिता बनी हुई है। यह चिन्ता का विषय है कि यूरोप अपने अतीत को भूलता जा रहा है और अनात्मवादी एवं हिंसक बनता जा रहा है। पिछले दो महा-युद्धों के पश्चात् से तो यूरोप की मनोभावना बहुत ही भौतिकवादी बन गई है। वहाँ इस समय तथाकथित प्रगतिवाद का बड़ा बोलबाला है। जीवन में नैतिक मूल्यों पर लोगों की आस्था कम हो रही है। आप लोग अहिंसा और दया की भावना को महत्व देते हैं यह बड़े ही महत्व और आनंद की बात है। प्राणी-मात्र के एकत्व की यह भावना भारतीय-दर्शन की अतिशय स्पृहणीय वस्तु है। मैं आपके जीवन-दर्शन का प्रेमी और प्रशंसक हूं। आपके स्नेह और समादर के लिए मैं आभारी हूं।

इसके पश्चात् आपने विविध प्रश्नों का उत्तर देते हुए केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के विषय में कहा—"इस समय वहाँ साढ़े सात हजार विद्यार्थी विद्याभ्यास कर रहे हैं। केम्ब्रिज को अपने गणित-शास्त्रियों का अभिमान है। वहां पर भी गुरु-शिष्य के निकट संपर्क को महत्त्व देते हैं। पर अब वहां पर भी अवस्था यह हो रही है कि अर्थकरी विद्याओं और शास्त्रों को पढ़ने की अधिक इच्छा है। केवल ज्ञान के लिए ज्ञानोपासना करने वाले छात्र बहुत कम हैं। महायुद्धों के कारण जन सामान्य की मनोभावना में बहुत परिवर्तन आ गया है। केम्ब्रिज में ८० प्रतिशत छात्रों को सरकार सहायता देती है। २० प्रतिशत छात्र अपने व्यय से पढ़ते हैं। महायुद्ध से पूर्व दशा विपरीत थी। सरकार केवल २० प्रतिशत छात्रों को सहायता देती थी।

स्मिथ महोदय ने गुरुकुलीय जीवन तथा यहां के वातावरण को बहुत पसंद किया। महाविद्यालय के छात्रों के साथ वे घुलमिल कर ज्ञानचर्चा और वार्ता-विनोद करते रहे। सभा में आपने अपने बनाए हुए कुछ एक संस्कृत श्लोक भी सुनाए। जिनमें एक श्लोक में अवलोकितेश्वर की स्तुति थी। स्मिथ महाशय मूलतः स्काच हैं और सेंट एंड्रूज विश्वविद्यालय में शिक्षा पाए हुए हैं। अभी आप ब्रह्मचारी हैं।

विशिष्ट अतिथि

गत दो महीनों में कई विदेशी विद्वान् यात्रियों ने गुरुकुल का अवलोकन किया। हालैण्ड के श्रीयुत एफ. एच होक लखनऊ से गुरुकुल आए। आप उत्तर प्रदेश की सरकार के चर्मव्यवसाय के सलाहकार हैं। स्वीडन की एक विदुषी महिला गुनेल गुमेसान विशेष रूप से गुरुकुल पधारीं। आप विश्व-

यात्रा करती हुई भिन्न भिन्न जातियों और बिरादरियों के रहन सहन, खानपान, रीति रिवाज, कर्मकाण्ड आदि का अनुशीलन कर रही हैं। टोरन्टो विश्वविद्यालय की विदुषी महिला डोरोथी फेरियार केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रोनाल्ड स्मिथ के साथ गुरुकुल आई। आप भी विश्वयात्रा करती हुई विभिन्न राष्ट्रों के लोकजीवन का अनुशीलन कर रही है। ये सन् १६५५ में स्वदेश लौटेंगी।

गुरुकुल जन्मोत्सव

२२ फरवरी रविवार के दिन कुल का जन्मोत्सव समस्त कुलवासियों ने बड़े प्रेम से मनाया। प्रभात में झंडा चौक में समवेत होकर सब कुलवासियों ने नवीन कुल पताका का आरोहण किया। इस प्रसंग पर गुरुकुलाचार्य श्री पं० प्रियव्रत जी ने कुल के ध्येयों और आदर्शों की स्मृति कराते हुए छात्रों को उद्बोधित किया। उसके अनन्तर वेदमंदिर में जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में कुल सभा हुई जिसमें ब्रह्मचारियों ने कुलमाता का यशकीर्तन किया। कुल के महत्व और विशेषताओं का स्मरण किया। सभाध्यक्ष के पद से प्रवचन करते हुए श्री आचार्य जी ने बताया कि यह दिन आत्मानुध्यान का दिवस है। आज के दिन कुल के हम सब गुरुओं और अन्तेवासियों को यह चिंतन करना चाहिए कि कुल के गौरवमय ध्येयों के पालन में हमने कितना योग दिया है। सामूहिक कुलगीत के साथ सभा समाप्त हुई।

वसंत पंचमी

इस वार कुलवासियों ने वसंत पंचमी दूधियाबन्द के समीप नहर के किनारे एक हरे शाद्वल में मनाई। पहले छात्रों की क्रीड़ाएँ हुई। उसके अनंतर प्रीति भोज हुआ और फिर श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार के सभापतित्व में साहित्य-गोष्ठी संपन्न हुई! गोष्ठी में ब्र० राजीव और ब्र० ओमप्रकाश (अम्बाला) ने विनोद पूर्ण गद्यरचनाएँ सुनाईं ब्र० शीलकांत ने गीत सुनाया। श्री शंकरदेव विद्यालंकार ने मराठी की एक सुन्दर कहानी सुनाई और सभापति जी के विवेचनात्मक प्रवचन के पश्चात् वसंतोत्सव का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

प्रकृति विज्ञान संग्रहालय

देहरादून की वन्य अनुसंधान संस्था के दीमक पर्यालोचन विभाग के दो सदस्य श्री कुमार कृष्ण जी एम एस-सी. और श्री अजब किशोर गुरुकुल में आकर तीन चार दिन तक रहे। गुरुकुल के आयुर्वेद कालेज के छात्रों ने समीप के वनों में परिभ्रमण करके दीमक के जीवन का अध्ययन किया। कई स्थानों से दीमकों के वल्मीक—टीले खोद कर दीमकों के राजा, रानी, सिपाही और मजदूरों के नमूने प्राप्त किए और संग्रहालय में सुरक्षित किए गए। यह ज्ञानयात्रा बहुत मनोरञ्जक और ज्ञानवर्धक रही।

ब्रह्मचारी हरिशंकर ने नहर के किनारे से एक सेह (पोरक्यूपाइन) प्राप्त की है, उसका पंजर संग्रहालय के लिए सुरक्षित कर लिया गया है।

वन्य अनुसंधान शाला देहरादून के श्री

आनंद स्वरूप जो भटनागर ने गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी गुरुकुल संग्रहालय के लिए बहुत से पौदों और वनस्पतियों की के नमूने प्रदान किए हैं। संग्रहालय उनका आभार प्रदर्शित करता है।

इस मास संग्रहालय मे अनेक प्रकार के नवीन जन्तुओं के नमूनों की वृद्धि हुई है। कुछ के नाम इस प्रकार हैं—

१. ओबीलिया-पौदे जैसा एक छोटा समुद्री जन्तु २. समुद्री एनीमोन-पुष्प जैसा समुद्री जतु। ३. एक प्रकार की मछली जिसके शरीर में विद्युत उत्पादक अवयव होते है। ४. फिस्ट्यूलेरिया-आरे जैसी आकृति की लम्बे मुखवाली मछली ५. सिनग्नेथस्-लम्बी मछली जिसकी थूथन बांसुरी जैसी है। ६. यूरियोटिफलास्-साप की आकृति का उभयचर जंतु। ७. रहानोफिस्-एक प्रकार का सर्प जिसकी पूँछ पर ढाल होती है। ८. शैलोन माइडास-कछुआ जिसके हाथ पैर पैडल जैसे होते है। ९. विविध विचित्र मछलियां। तिलचट्टे का जीवन-क्रम अंडे से वयस्क होने तक की सब अवस्थाएँ।

गुरुकुल महोत्सव

कुल का वार्षिक महोत्सव इस वर्ष ११,१२,१३,१४ एप्रिल के दिनों में सपन्न होगा। विविध सम्मेलनों और विद्वानों के भाषणों का ज्ञानप्रद और मनोरम कार्यक्रम बनाया जा रहा है। वेद सम्मेलन, सरस्वती सम्मेलन, हिंदी वाद-विवाद सघलन तथा आयुर्वेद सम्मेलन आदि का आयोजन किया गया है।

दिवगत मिश्र जी

गुरुकुल के पुराने मित्र, और उपकारक, यशस्वो शिक्षाशास्त्री और नागरी प्रचारिणी सभा काशी के अन्यतम प्रतिष्ठापक, सौजन्य-मूर्ति श्री प० रामनारायण जी मिश्र की निधन-वार्ता सुनकर गुरुकुल शिक्षानगर मे बड़ा विषाद और खेद अनुभव किया गया। उनके सम्मान में विद्यालय का पाठ बद कर दिया गया। विद्यालय के प्रार्थना-भवन में एकत्र होकर छात्रों और गुरुजनों ने प्रशसित मिश्र जी द्वारा सामाजिक, साहित्यिक, शैक्षणिक और युवकों के चरित्र-निर्माण के क्षेत्र मे की गई अमूल्य सेवाओं के प्रति समादर और श्रद्धा प्रकट की। स्थापना काल से ही श्री मिश्र जी गुरुकुल के परमप्रमी और सहायक थे। "भारतीय शिष्टाचार" नामक उनकी सुविदित पुस्तक छात्र-मडली के लिए प्यार की वस्तु रही है। शिक्षातत्त्वज्ञ के नाते गुरुकुल को समय समय पर उनकी उपयोगी सलाहें और सूचनाएं मिलती रही हैं गुरुकुल की स्वर्ण-जयती पर आयोजित "आर्यभाषा-सम्मेलन" के वे सभापति बनाए गए थे। एक कर्मयोगी की भांति उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, और दयानंद कालेज बनारस आदि कई सस्थाओं के निर्माण, सगठन और संचालन में अपना जीवन लगा दिया था। अपने स्वभाव की मधुरता, साधुता, शिष्टता और मिलन सारी के कारण वे अजातशत्रु बन गए थे। ऐसे कृतिशील सत्पुरुष के स्नेह, सहयोग, सेवा और सद्गुणों को गुरुकुल कृतज्ञता और श्रद्धा से स्मरण कर रहा है। ❀

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग ,, २॥), २॥), २॥)
ब्राह्मण की गौ ,, ॥)
वैदिक अध्यात्मविद्या श्री भगवद्दत्त १)
वैदिक स्वप्न विज्ञान ,, २)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां श्री रामनाथ १॥)
वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत ६)
सोम-सरोवर,सजिल्द,अजिल्दश्रीचमूपति२),१॥)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १॥)
वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र श्री धर्मदेव १॥)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य श्री विश्वनाथ २)
धर्मोपदेश१,२,३भाग स्वा०श्रद्धानन्द,१),१),१॥)
आत्ममीमांसा श्री नन्दलाल २)
प्रार्थनावली ।) कविता मंजरी ।–)
आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति ।)
कविता कुसुमाञ्जली ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] ५)
लहसुन : प्याज श्री रामेश बेदी २॥)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] ,, ३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] ,, २)
सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] ,, १॥)
देहाती इलाज [दूसरा संस्करण] ,, १)
मिर्च [काली, सफेद और लाल] ,, १)
त्रिफला [तीसरा संस्करण] ,, ३।)
सांपों की दुनियां ,, ५)

स्तूप निर्माण कला सचित्र सजिल्द, ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १।)
जल चिकित्सा श्री देवराज १॥)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द ७),६)
अपने देश की कथा सत्यकेतु १।=)
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)
ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार ॥)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव ।)
महावीर गेरीबाल्डी श्री इन्द्र १।)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] १)
नीतिशतक [संशोधित] =)
साहित्य-दर्पण [संशोधित] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०]॥।=)
,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण] ।।=)
अष्टाध्यायी, पूर्वार्द्ध ,उत्तरार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७),७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] ।)
साहित्य-सुधासंग्रह १,२,३ बिन्दु १।), १।), १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली ✓)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १।)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] २॥)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] ॥)
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] २।)
ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ़ संस्कृत ट्रांसलेशन एण्डकपोजीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ १)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

श्री रामेश बेदी गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।